लोकोदय ग्रन्थमाला . हिन्दी ग्रन्थांक—१२

सम्पादक एवं नियामक :

लक्ष्मीचन्द्र जैन

Lokodaya Series Title No 12

GAHAREY PAANI PAITH

(Short Stories etc)

AYODHYA PRASAD GOYALIYA

Bharatiya Jnanpith Publication

First Edition 1951

Fourth Edition 1966

Price Rs 3 00

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

प्रधान कार्यालय

९, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता–२७

प्रकाशन कार्यालय

दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी–५

विक्रय-केन्द्र

३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

प्रथम संस्करण १९५१

चतुर्थ संस्करण १९६६

मूल्य ३.००

सन्मति मुद्रणालय, वाराणसी–५

स्नेहमयी भाभी,

स्वप्नमे भी किसीको पीडा नही पहुँचायी, फिर भी आपदाओके पहाड तुमपर टूट पडे, इसे भाग्यकी विशेष अनुकम्पा ही समझना चाहिए अन्यथा—
"किसको होती हैं अता इस शानकी वरवादियाँ"

ये दुःख हम सबकी जागीर हैं भाभी,
तुम्हे किस मुँहसे अपनी यह कृति भेंट करूँ—
"मेरे आँसू सहित अनमोल मोती
तुम्हारे हारके क़ाबिल कहाँ हैं ?"

द्वितीय संस्करण

प्रस्तुत पुस्तकके जो अश गोयलीयजीके नाम या उपनाम (रामसरनात्मज या सैलानी नाम) से जिन पत्र-पत्रिकाओमे प्रकाशित होते रहे हैं, इस सस्करणमे उनका नाम और लेखन-समय भी दे दिया गया है ।

तृतीय संस्करण

कुछ कहानियोके शीर्षक परिवर्तित किये हैं और यत्र-तत्र संशोधन भी किया है ।

अनुक्रम

• गुरुजनोंके चरणोंमें बैठकर जो सुना

• धर्म और इतिहास-ग्रन्थोंमें जो पढ़ा

• हियेकी आँखोसे जो देखा

• • •

एक डुबकी

जिन खोजा तिन पाइयाँ, गहरे पानी पैठ ।
मैं बौरी ढूँढन गयी, रही किनारे बैठ ॥

महात्मा कबीरका यह दोहा बहुत प्रसिद्ध है । अर्थ भी सीधा है, विद्यार्थियोको केवल यह बताना पडता है कि 'बौरी' का अर्थ 'बावरी' या पगली है । इसके बाद विद्यार्थी बडी सरलतासे अर्थ कर देता है,

"जिसने खोजा, उसने गहरे पानीमें उतरकर ही पाया। मै ऐसी पागल कि ढूँढने गयी तो किनारेपर बैठकर ही रह गयी ।"

इस तरह उक्त दोहेका अर्थ तो शब्दोके किनारेपर बैठकर झलक आता है, पर भाव समझनेके लिए इस ज्ञान-वापीमे गहरे उतरना पडता है। कबीरकी सारी जीवन-व्यापी साधनाका तत्त्व इस दोहेमें निहित है। कबीर, तत्त्वके जिस स्पष्ट दर्शन और गूढ बातको सादगीसे समझा देनेके लिए विख्यात हैं, उसका उदाहरण भी इस दोहेमें मिलता है । कबीरका 'कवि' भी अपनी समस्त भावुकताके साथ दोहेके भावमे व्याप्त है । कबीरकी प्रणयाकुल आत्मा अपने प्रियतम, अपने भगवान्की खोजमें निकली तो दुनिया-भरमें भटक आयी—घाट-घाटपर झाँक आयी पर प्रियतमकी प्राप्ति नही हुई । भगवान् तो घटके अन्दर व्याप्त हैं, हृदयकी इस वापीमें बिना उतरे, बिना चूडान्त डूबे वह कहाँ मिलेंगे ? भगवान् तो शेषनागकी शय्या-पर क्षीरसागरमें शयन करते हैं न ? हाय, मैं कैसी बावली हूँ जो ऊपर-ही-ऊपर देखती रही, किनारे-ही-किनारे बैठी रही ।

तात्पर्य यह, कि जितना सोचते जाइए, गहरे उतरते जाइए, उतना ही अर्थ और मर्म उजागर होता चला जायेगा । धर्म, कर्म, अध्ययन, भोग

और योग सबकी सफलताकी कुंजी और आदेश-वाक्य एक ही है—

"गहरे पानी पैठ ।"

जब महात्मा कबीरने उक्त दोहेमे दूसरा पद 'गहरे पानी पैठ' डाला था तो उन्हें रहस्यवादी होते हुए भी यह क्या पता था कि प्राय चार सौ वर्ष बाद गोयलीय नामका एक लेखक उनकी साधना और सिद्ध-भूमि काशीसे ऐसी पुस्तक प्रकाशित करेगा, जो उक्त पदके अमर तथ्यको पुस्तकका शीर्षक बनाकर प्रचारित करेगा। श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीयने कबीरके इस सूत्रको जीवनका सूत्रधार बनाया है, जो उनके जीवन और प्रयासको सार्थक बनाता है। उनकी एक अत्यन्त सफल कृति 'शेर-ओ-शाइरी' के दो सस्करण हम ज्ञानपीठसे प्रकाशित कर चुके है। जहाँ 'शेर-ओ-शाइरी' में गोयलीयजीने विशाल उर्दू-साहित्यके सागरमे गहरे पैठकर गौहर निकाले थे, वहाँ 'गहरे पानी पैठ' में अनादि, अनन्त जीवनकी सागर-सरिताओमें डूबकर और ग्रन्थोको मथकर उन्होंने कुछ रत्न निकाले है। इसमें मन्थनके रत्न भी हैं और फेन भी हैं। फेन न होते तो रत्नोकी चमक और उनका निखार उतना न उभर पाता।

'गहरे पानी पैठ' मे कुल मिलाकर एक-सौ सत्रह कहानियाँ, किंवदन्तियाँ, सस्मरण और आख्यान, चुटकुले है। यह सब तीन खण्डोमें विभक्त हैं,

१ गुरुजनोके चरणोमें बैठकर जो सुना (५५ शीर्षक)

२. इतिहास और धर्मग्रन्थोमे जो पढा (४७ शीर्षक)

३ हियेकी आँखोसे जो देखा (१५ शीर्षक)

इतिहास और धर्मग्रन्थोंमे ली गयी कथाएँ नीति और शिक्षाकी दृष्टिसे उपादेय है, पर नीतिके साथ-साथ लेखककी कारीगरी जिन अशोमें चमत्कृत होती है, वे हैं 'बडे जनोंके आशीर्वादसे' के अन्तर्गत दी हुई दन्तकथाएँ और 'हियेकी आँखोसे' देखे गये सस्मरण। दन्तकथाएँ हो, चाहे सस्मरण, सबके मूलमें होती हैं जीवनकी कुछ ऐसी घटनाएँ जो युग-युगके अनुभवको

और जीवनकी चित्र-विचित्र परिस्थितियोंको साररूपमें रख देती हैं और जिन्हें भूलना कठिन होता है। इन घटनाओंके चित्रणका जहाँ एक उद्देश्य मनोरंजन है, वहाँ जीवन-कौशलकी शिक्षा और नीतिका प्रसार भी है। जातक, हितोपदेश, पंचतन्त्र और Aesop's fables से लेकर 'अलिफ लैला' तक इस प्रकारकी सभी पुस्तकें प्राय मनोरजन और नीति-शिक्षा दोनो उद्देश्योंको साधती हैं। प्रस्तुत सग्रहमें दोनो उद्देश्योंका ध्यान रखा गया है। जहाँ दोनोंका सन्तुलन है, वही आख्यान मन और हृदयको पूरी तरहसे प्रभावित करता है।

इस प्रकारके आख्यानों और लोक-प्रचलित कथाओंमें कथा-भाग तो प्राय विदित और पुराना ही रहता है, पर लेखक अपनी शैली, भाषा और वर्णनके चमत्कारसे उनमें नया आकर्षण उत्पन्न करता है। जिस प्रकार आषाढके प्रथम दिवसका मेघ सब किसीको पुलकित करता है, पर उस श्यामल आर्द्रताको व्यक्त करनेके लिए सभी कालिदास नहीं बन पाते इसी तरह प्रचलित कथाओंको जाननेवाला प्रत्येक व्यक्ति न 'हितोपदेश' का विष्णुशर्मा बन सकता है न fables का ईसप। गोयलीयजीकी साहित्यिकता ही नही, उनके व्यक्तित्वकी विशेषता भी उनकी आकर्षक वर्णन-शैली और टकसाली, बामुहावरा भाषामें है।

जिन लोक-कथाओंको आप पहले सुन चुके हैं, उन्हें आप इस सग्रहमें भी देखेंगे तो पायेंगे कि प्राय प्रत्येक कहानीको सजीव बनानेका प्रयत्न किया गया है और पात्रोंके सहज वातावरणके अनुसार स्वाभाविक भाषा-का प्रयोग किया गया है। जहाँ भी सम्भव हुआ है, कहानीके निर्वैयक्तिक आकारको नाम और रूपके उपयुक्त रगोसे भरा गया है। यदि एक कुत्तेको मथुरासे दिल्ली जाना है तो रास्तेमें चौमा, छटीकरा, छातई, कोसी, होडल, पलवल, वल्लभगढ, फ़रीदाबाद, निज़ामुद्दीन और ओखलाके बिरादरी-भाइयोंसे उसकी मुलाक़ात और आवभगतका उल्लेख किया गया है ताकि यात्राका भूगोल कहानीकी वास्तविकता और

प्रभावको बढ़ा सके।

'मौलवीकी दाढी' का किस्सा घटनाकी वजहसे ही दिलचस्प नही है, उसमें ज़बानकी मिठास और मुहावरोकी रवानीके कारण मुन्शी प्रेमचन्द-की शैलीका आनन्द आता है

"खुदाके वास्ते मुझे भी एक बात अता फर्माइए, ताकि बतौर तबर्रुक अपनी जानसे भी ज्यादा अज़ीज़ रख सकूँ और मनकी मुरादें पूरी कर सकूँ।"

"मुल्लाजीने तारीफ सुनी तो बाँछें खिल गयी। आव देखा न ताव, चट एक बाल नोचकर मौलवी लतीफको मरहम्मत फ़र्मा दिया। बालका देना था कि गाँववाले भी इसरार करने लगे 'सब एकबारगी टूट पडे। और इस नेमतसे कोई महरूम न रह जाये, इसी आपाधापीमें मुल्लाजी-की दाढी ठूँठ हो गयी।"

'बुढिया पुराण' में घटना नगण्य है, मगर मियाँ-बीवीकी बातचीतकी इतना पुरलुत्फ तूमार बाँधा है कि अज़ीमबेग़ चुग़ताईकी याद आ जाती है।

इस लिहाज़से 'उचक्का' भी कम मज़ेदार नही। दिल्लीकी फूलवालो-की सैरमें "यह हज़रत भी एडीसे चोटी तक ऐनफैन बने हुए थे। पाँवमे सलेमशाही जूता, पाँच पीके लट्ठेका चूडीदार चुस्त पायजामा, शरीरमें चुन्नट-दार तनज़ेबका अँगरखा और पट्टेदार बालोपर दिल्लीकी बँधी हुई गोलेदार पगडी। आँखोमें सुरमा लगाये, मुँहमें पान खाये, और हाथमें चाँदीकी मूठकी बेत लिये दो क़दममें मुसाफ़िरके पीछे हो लिये।"

'रँगा स्यार' में वर्णनका दूसरा ही रंग नज़र आता है.

"सूर्यके सन्ध्यासे पाणिग्रहण करते ही रजनी काली चादर डालकर सुहागरातके प्रबन्धमे व्यस्त थी। जुगनूँ सिरोपर हण्डे उठाये इधर-उधर भाग रहे थे। दादुरोके आशीर्वादात्मक गीत समाप्त भी न हो पाये थे कि कुमरीने सरोके वृक्षमे, कोयलने अमुआकी डालसे, बुलबुलने शाखे-गुलसे बधाईके राग छेडे। श्वानदेव और बैसाखनन्दन अपने मँजे हुए

कण्ठसे श्यामकल्याण अलापकर इस शुभ सयोगका समर्थन कर रहे थे, झीगुर देवता सितार वजा रहे थे। कट्टो गिलहरी नाचनेको प्रस्तुत थी, पर रात्रि अधिक हो जानेसे वह तैयार न हुई। फिर भी उलूकखां वल्द वूमखाँ अपना खुरासानी और श्रीमती चमगोदड-किशोरी अपना ईरान नृत्य दिखाकर अजीव समाँ वाँध रहे थे।"

पहले खण्डकी लोक प्रचलित कथाओ और किंवदन्तियोमें प्राय देहली-की वोलचाल और सभ्यताका परिचय मिलता है। कहानियोका परिधान उसी क्षेत्रका है। दिल्लीके पास हैं गुडगांव, रोहतक, नारनौल और दूसरे देहाती ज़िले जहांके जाटोकी अक्खड सरलता, अनेक परिहासपूर्ण किंव-दन्तियोका प्राण है। 'जाटकी कृतज्ञता' किस सरलतासे प्रकट हुई है ·

"अरे साव, तेरा चिरागअली नाम किस मूरखने रखा है ? तू तो मसालअली है।"

'ज़िद' 'नीलका भैंसा' और 'टिकिट वावूका फूफा' जट-विद्या और जट-वुद्धिके मनोरजक उदाहरण हैं।

इन कहानियोके हास-परिहास और नीति ज्ञानके पीछे जो जीवनकी झाँकियाँ हैं, लेखकने उन्हें अपने हृदयके शीशेमें उतारा है—वह पात्रोंके साथ हमजोली वनकर खेला है, हँसा है और रोया है—या तल्लीनतासे उनका चित्रण किया है। पुस्तकका तीसरा खण्ड इस दृष्टिसे वहुत महत्त्व-पूर्ण है, क्योकि मानवताके अनेक सजीव चित्र उसमें अकित किये गये हैं। देहलीके एक धनी सर्राफ़के निर्धन सम्वन्धी, जिन्होने अपनी इज्जत वचानेके लिए गाँठकी गिन्नी सर्राफकी गिन्नीके ढेरमें मिला दी थी, साधु-स्वभाव, निरक्षर विहारीलाल जो जीवनके विषको इसलिए हँस-हँसकर पीता रहा कि दूसरोको सदा आदर और प्रेमका अमृत पिला सके, दो भाई जो एक-दूसरेकी रक्षाके लिए फाँसीके तख्तेको चूमनेको तैयार हो गये, सुन्दर नामकी वह वुढिया हलालखोरी, जिसने लेखकके जेलसे छूटनेपर दामन

फैलाकर दुआ दी और जिसने गद्गद होकर कहा—"मुबारक आजका दिन जो अपने जुग्याके हाथसे मुझे यह लेहना नसीब हुआ", और वह मुन्शी ऊधमसिंह, जिन्होंने २०० रु० की रकमका "चुपचाप घाटा इसलिए उठा लिया कि किसी निरपराध मनुष्यपर उनके कारण कही कुछ अत्याचार न हो जाये"—यह सब ऐसे चित्र हैं, जिन्हें पढकर दिल भर आता है और मानवताके इन मूक, गरीब, स्वाभिमानी प्रतिनिधियोंके प्रति मस्तक आदरसे झुक जाता है। गोयलीयजी इन सफल रेखाचित्रोंकी कलाकारिताके लिए बधाईके पात्र हैं। काश, वह ऐसे रेखाचित्र हिन्दी ससारको लगातार देते रहे—जीवनका प्रवाह अनन्त और पारावार असीम है। गोयलीयजी-जैसे साधक ही डुबकी लगाकर नयेसे नये आबदार मोती निकाल सकते हैं। भारतीय ज्ञानपीठ लोकोदयकारी साहित्यकी अभिवृद्धिके लिए इस प्रकारके प्रकाशन प्राप्त करनेके लिए सदा प्रयत्नशील रहेगा।

—लक्ष्मीचन्द्र जैन

(सम्पादक : लोकोदय ग्रन्थमाला)

डालमियानगर
७ अप्रैल १९५१

• • • •

गुरुजनों के चरणों में बैठकर
जो सुना

•

जीवनकी सार्थकता

एक अत्तारकी दुकानमें गुलावके फूल खरलमें घोटे जा रहे थे। किसी सहृदयने पूछा, "आप लोग उद्यानमें फले-फूले, फिर आपने ऐसा कौन-सा अपराध किया, जिसके कारण आपको ऐसी असह्य वेदना उठानी पड रही है?"

कुछ फूलोंने उत्तर दिया, "शुभेच्छु, हमारा सबसे वडा अपराध यही है कि हम एकदम हँस पडे, दुनियासे हमारा यह हँसना न देखा गया। वह दुखियोको देखकर समवेदना प्रकट करती है, दयाका भाव रखती है, परन्तु सुखियोको देख ईर्ष्या करती है, उन्हें मिटानेको तत्पर रहती है। यही दुनियाका स्वभाव है।"

वाकी फूलोंने उत्तर दिया, "किसीके लिए मर मिटना, यही तो जीवन-की सार्थकता है।"

फूल पिस रहे थे, पर परोपकारकी महक उनमें-से जीवित हो रही थी। सहृदय मनुष्य चुपचाप ईर्ष्यालु और स्वार्थी ससारको ओर देख रहा था।

अनेकान्त, दिल्ली, जून १९३९ ई०

■

दिलमें खोट

एक मार्ग चलती हुई बुढिया जब काफी थक चुकी तो पाससे जाते हुए एक घुड़सवारसे दीनतापूर्वक बोली,

"भैया, मेरी यह गठरी अपने घोडेपर रख ले और जो उस चौराहेपर प्याऊ मिले, वहाँ दे देना। तेरा बेटा जीता रहे, मैं बहुत थक गयी हूँ, मुझसे अब यह उठायी नही जाती।"

घुड़सवार तुनककर बोला, "हम क्या तेरे बाबाके नौकर है, जो तेरा सामान लादते फिरें?" और यह कहकर वह घोडेको ले आगे बढ गया। बुढ़िया बेचारी धीरे-धीरे चलने लगी। आगे बढकर घुड़सवारको ध्यान आया कि गठरी छोडकर बडी गलती की। गठरी उस बुढियासे लेकर प्याऊवालेको न दे यदि मैं आगे चलता बनता, तो कौन क्या कर सकता था? यह ध्यान आते ही वह घोडा दौडाकर फिर बुढियाके पास आया और बडे मधुर वचनोंमें बोला,

"ला बुढिया माई, तेरी यह गठरी ले चलूँ, मेरा इसमें क्या बिगडता है, प्याऊपर देता जाऊँगा।"

बुढिया बोली, "नही बेटा, वह बात तो गयी, जो तेरे दिलमे कह गया है वही मेरे कानमे कह गया है। जा अपना रास्ता नाप! मैं तो धीरे-धीरे पहुँच ही जाऊँगी।"

वह घुडसवार मनोरथ पूरा न होता देख अपना-सा मुँह लेकर चलता बना।

अनेकान्त, दिल्ली; फरवरी १९२९ ई०

■

आत्म-चिन्तन

एक ध्यानाभ्यासी शिष्य ध्यान-मग्न थे कि सीकारेकी-सी आवाज़ करते हुए ध्यानसे विचलित हो गये। पास ही गुरुदेव बैठे थे, पूछा, "वत्स! क्या हुआ?"

शिष्यने कहा, "गुरुदेव! आज ध्यानमे दाल-बाटी बनानेका उपक्रम किया था। आपके चरणकमलोंके प्रतापसे ध्यान ऐसा अच्छा जमा कि यह ध्यान ही न रहा कि यह सब मनकी कल्पनामात्र है। मैं अपने ध्यानमें मानो सचमुच ही दाल-बाटी बना रहा था कि मिर्चे कुछ तेज़ हो गयी और खाते ही सीकारा जो भरा तो ध्यान भग हो गया। ऐसा उत्तम ध्यान आज तक कभी न जमा था, गुरुदेव! मुझे वरदान दें कि मै इससे भी कही अधिक ध्यान-मग्न हो सकूँ।"

गुरुदेव मुसकराकर बोले, "वत्स! प्रथम तो ध्यानमे—परमात्मा, मोक्ष, सम्यक्त्व, आत्म-हितका चिन्तन करना चाहिए था, जिससे अपना वास्तवमें कल्याण होता, ध्यानका मुख्य उद्देश्य प्राप्त होता और यदि पूर्व-सचित सस्कारोके कारण सासारिक मोह-मायाका लोभ सवरण नही हो पाया है तो ध्यानमें खीर, हलुवा, लड्डू, पेडा आदि बनाये होते, जिससे इस वेदनाकी वजाय कुछ तो स्वाद प्राप्त हुआ होता। वत्स! स्मरण रखो, हमारा जीवन, हमारा मस्तिष्क सब सीमित है। जीवनमे और मस्तिष्कमें ऐसे उत्तम पदार्थोंका सचय करो जो अपने लिए ज्ञान-वर्द्धक एव लाभप्रद हो। व्यर्थकी वस्तुओका सग्रह न करो, ताकि फिर हितकारी चीज़ोंके लिए स्थान ही न रहे।"

अनेकान्त, दिल्ली, जून १९३९ ई०

■

राणा प्रतापका भाट

जब वीर-केसरी राणा प्रताप जंगलों और पर्वत-कन्दराओंमें भटकते फिरते थे, तब उनका एक भाट पेटकी ज्वालासे तंग आकर शाहंशाह अकबरके दरबारमें पहुँचा और सिरकी पगड़ी बगलमें छिपाकर फर्शी सलाम झुका लाया। अकबरने भाटकी यह उद्दण्डता देखी तो तमतमा उठा और रोष-भरे स्वरमें बोला,

"पगड़ी उतारकर मुजरा देना, जानता है कितना बड़ा अपराध है?"

भाट अत्यन्त दीनता-पूर्वक बोला, "अन्नदाता! जानता तो सब कुछ हूँ, मगर क्या करूँ, मजबूर हूँ। यह पगड़ी हिन्दूकुल-भूषण राणा प्रताप-की दी हुई है। जब वे आपके सामने न झुके, तब उनकी दी हुई यह पगड़ी कैसे झुका सकता था? मेरा क्या है, मैं ठहरा पेटका कुत्ता, जहाँ भी पेट भरनेकी आशा देखी, वहीं मान-अपमानकी चिन्ता न करके पहुँच गया। मगर जहाँ-पनाह ..."

अकबरने सोचा, "वह प्रताप कितना महान् है, जिसके भाट तक शत्रुके शरणागत होनेपर भी उसके स्वाभिमान और मर्यादाको अक्षुण्ण रखते हैं।"

अनेकान्त, दिल्ली, मार्च १९३९ ई०

■

हृदय-परिवर्त्तन

किसी पुस्तकमें पढा था, कि अमुक देशकी जेलमें एक कैदी, जेलरके प्रति विद्रोहकी भावना रखने लगा। वह जेलरके नाक-कान काटनेकी तजवीज़ सोच रहा था कि जेलरने उसे बुलाया और कमरा बन्द करके उससे अपनी हजामत बनवानी शुरू कर दी। हजामत बनवा चुकनेपर जेलरने कहा,

"कमरा बन्द है, ऐसे मौकेपर तुम मेरे नाक-कान काटनेवाली अभिलाषा भी पूरी कर लो। मैं क़सम खाता हूँ कि यह बात किसीसे न कहूँगा।"

जेलर और भी कुछ शायद कहता, मगर उसकी गरदनपर टप-टप गिरनेवाले आँसुओंने उसे चौंका दिया। वह कैदीका हाथ अपने हाथोंमें लेकर अत्यन्त स्नेह-भरे स्वरमें बोला,

"क्यों भाई! क्या मेरी बातसे तुम्हारे कोमल हृदयको आघात पहुँचा? मुझे माफ करो, मैंने गलतीसे तुम्हें तकलीफ पहुँचायी।"

अभागा कैदी सुबककर जेलरके पांवोंमें पडा रो रहा था, जेलरके प्रेम, विश्वास और क्षमाभावके आगे उसकी विद्रोहाग्नि बुझ चुकी थी। वह आँखोंकी राह अपने हृदयकी वेदना व्यक्त कर रहा था।

अनेकान्त, दिल्ली; जुलाई १९३९ ई०

■

एक लाख रुपयेपर ठोकर

साहूकारकी माताने कहा, "बेटा, तुम लाखो रुपयेका लेन-देन करते हो, पर मैंने आज तक एक लाख रुपया एक स्थानपर रखा हुआ नही देखा। एक लाख रुपया चुनकर रखनेसे कितना लम्बा-चौड़ा, ऊचा चबूतरा बनता है यह मै उस चबूतरेपर बैठकर देखना चाहती हूँ।"

एक लाख रुपयेका चबूतरा बना और उसपर वे बैठी। माता जिस रुपयेपर बैठी हैं, वह तो दान करना ही चाहिए, यही सोचकर एक ब्राह्मणको बुलाया गया। दान देते हुए सेठको तनिक अभिमान छू गया। बोला, "पण्डितजी, दातार तो बहुत मिले होंगे, लेकिन ऐसा दातार न मिला होगा।"

पण्डितजी दान लेने अवश्य गये थे, परन्तु भिक्षुक-मनोवृत्तिके नहीं थे। उनका स्वाभिमान जाग उठा और अपनी जेबसे एक रुपया निकाल लाख रुपयेके चबूतरेपर डालकर बोले,

"तुम्हारे-जैसे दातार तो बहुत मिल जायँगे, पर मेरे-जैसे त्यागी विरले ही होंगे, जो एक लाखको ठोकर मारकर कुछ अपनी ओरसे मिलाकर चल देते हैं।"

वीर, दिल्ली, २७ जनवरी १९४० ई०

■

पाप छिपाये ना छिपे

एक प्रेमी-प्रेमिका आजीवन ब्रह्मचर्यपूर्वक जीवन व्यतीत करनेकी अभिलाषा रखते थे। रोजाना एक साथ रहते, खाते-पीते, सोते-बैठते, हँसते-खेलते, पर क्या मजाल जो मनमें विकार आता। इसी तरह सानन्द निर्विकार प्रेममय जीवन व्यतीत हो रहा था कि ऐक रोज कामदेवके बाणोंने प्रेमीका चित्त विचलित कर दिया। मनके किसी कोनेमे छिपी हुई वासना उजागर हो गयी। प्रेमिकाने प्रेमीकी भूल सुझायी, पर वह न माना। रतिगृहमे जानेसे पूर्व मकानके नीचे बहती हुई नदीपर स्नान करने गया तो देखा एक मनुष्य ढोल लिये दीवारके सहारे खडा है। पूछनेपर ढोलवालेने बतलाया,

"आज प्रसिद्ध शीलवान प्रेमियोके सत डिगेंगे, इसलिए डोडी पीटनेको खडा हुआ हूँ।"

प्रेमीने स्नान किया और घर आकर सदैवकी भाँति चुपचाप सो गया। सुबह उठकर देखा तो ढोलवाला चला जा रहा था। दर्याफ्त करनेपर कहा,

"अब सत नही डिगेगा इसीलिए जा रहा हूँ।"

तब प्रेमिकाने मुसकराकर कहा, "देखो! सात परदोमें सोचा हुआ पाप भी तालाबकी काईके समान जनताके समक्ष आ जाता है।"

जनवरी १९४० ई०

■

फ़िक्र बुरी, फ़ाक़ा भला

सुनते हैं एक मस्त फकीरने किसी बादशाहके हाथीको पूँछ इतने जोर-से पकड ली कि वह एक कदम भी आगे न रख सका। इस घटनाकी सूचना बादशाहको दी गयी तो उसे भी ऐसे दिलेर आदमीके देखनेकी अभिलाषा हुई। फकीरको देखनेपर बादशाह उसकी ताकतका सबब समझ गया। उसने अपनी मस्जिदमें बिना नागा रोज़ाना चिराग जलानेके लिए उस अलमस्त फकीरको किसी तरह राज़ी कर लिया। चिराग जलानेके उपलक्ष्यमें शाही भोजनालयसे तर-ब-तर सुस्वादु भोजन फकीरको मिलने लगा।

एक माहके बाद हाथी रोकनेका अवसर दिया गया तो वह पूँछके साथ घिसटता चला गया। बादशाहने फकीरका यह हाल देखा तो मुसकरा-कर पूछा, "साईं! जब रूखा-सूखा खाते थे और फाके करते थे, तब तो हाथी रोक सके और अब शाही बावर्चीखानेसे बेशकीमती ताकतवर गिज़ा खानेपर भी न रोक सके, बडे ताज्जुबकी बात है!"

"शाहे-आलम! इसमें ताज्जुबकी क्या बात है? पहले फाके अकसर होते थे, लेकिन फिक्र पास भी न फटकती थी। अब तर निवाले मिलते हैं मगर रोज़ाना चिराग जलानेकी पाबन्दीकी चिन्ताने मेरे शरीरमें घुन लगा दिया है।"

जनवरी १९५० ई०

■

अवश्यमेव भोक्तव्यम्

एक-एक करके आठ पुत्र-वधुओंके भरी जवानीमें विधवा हो जानेपर भी वृद्धकी आँखोंमें आँसू न आये। साम्यभावसे सब कुछ सहन करता रहा। गाँवके कुछ लोग उसके धैर्यकी प्रशंसा करते। कुछ लोग वज्र-हृदय कहकर उसका उपहास करते। श्मशानमें जिन्हें शीघ्र वैराग्य घेर लेता है और फिर घर आकर सांसारिक कार्योंमें लिप्त हो जाते हैं—ऐसे लोग उसे जीवन्मुक्त और विदेह कहनेसे न चूकते और छिद्रान्वेषी उसे मनुष्य न मानकर पशु समझते।

बात कुछ भी हो, एक-एक करके ब्याहे-त्याहे आठ लड़के दो वर्षमें उठ गये। उनकी स्त्रियोंके करुण-क्रन्दनसे पड़ोसियोंको रुलायी आ जाती, पर वृद्ध खटोलेपर चुपचाप बैठा रहता।

कुछ दिनों बाद गाँवमें प्लेगकी आँधी आयी तो उसमें उसका एकमात्र पौत्र भी लुढक गया। वृद्धके धैर्यका बाँध टूट गया, उसने अपना सिर दीवारसे दे मारा। नारदमुनि अकस्मात् उधरसे निकले तो वृद्धको डकराते हुए देखकर खड़े हो गये।

विपद्-ग्रस्तको देखकर सूखी सहानुभूति प्रकट करनेमें लोगोंका बिगड़ता ही क्या है? जो कल दहाड़ मारकर रोते देखे गये हैं, वे भी उपदेश देनेके इस सुनहरी अवसरसे नहीं चूकते। फिर नारदमुनि तो आखिर नारदमुनि ठहरे! कर्त्तव्यभारके नाते कण्ठमें मिसरी घोलते हुए नारदमुनि बोले,

"बाबा! धैर्य रखो, रोनेसे क्या लाभ?"

वृद्धने अजनबी-सी आवाज़ सुननेपर अचकचाकर देखा तो पीताम्बर पहने और हाथमें वीणा लिये नारद दिखाई दिये। वृद्ध उन्हें साधारण भिक्षु समझकर भरे हुए कण्ठसे बोला, "स्वामिन्! धैर्यकी भी कोई सीमा है। एक-एक करके आठ बेटोंको आगमें धर आया। ले देकरके

घरमें एक टिमटिमाता दीपक बचा था, सो आज उसे भी क्रूरकालकी आँधीने बुझा दिया। फिर भी धैर्य रखनेको कहते हो! बाबा, धैर्य मेरे पास अब है ही कहाँ जो उसे रखूँ? उसे तो कालने पहले ही छीन लिया। मुझे अब बुढापेमे रोनेके सिवाय और काम भी क्या रह गया है, स्वामिन्!"

सहनशक्तिसे अधिक आपत्ति आनेपर आस्तिक भी नास्तिक बन जाते है। जो पर्वत सीना ताने हुए करारी बूँदोके वार हँसते हुए सहते है, वे भी आग पडनेपर पिघल उठते हैं—ज्वालामुखी-से सिहर उठते हैं। नारदको भय हुआ कि कही वृद्ध नास्तिक न हो जाये। अत. बोले,

"तो क्या तुम अपने पौत्रकी मृत्युसे सचमुच दु खी हो? वह तुम्हें पुन दिखाई दे जाये तो क्या सुखी हो सकोगे?"

वृद्धने निर्निमेष नेत्रोसे नारदकी ओर देखकर अपने हृदयकी वेदनाको आँखोमे व्यक्त करके अपनी अभिलाषाको मौन भाषामें प्रकट कर दिया।

नारदकी मायासे क्षितिजपर पौत्र दिखाई दिया तो वृद्ध विह्वल होकर लपका।

"अरे मेरे लाल, तू कहाँ चला गया था?"

"अरे दुष्ट, तू मेरे शरीरको छूकर अपवित्र न कर। पूर्व जन्ममे तूने और तेरे आठ पुत्रोने जिन लोगोको यन्त्रणाएँ पहुँचायी थी, ऐश्वर्य और अधिकारके मदमें जिन्हें तूने मिट्टीमें मिला दिया था, वे ही निरीह प्राणी तेरे पुत्र और पौत्र रूपमे जन्मे थे। ये रुदन करती हुई तेरी आठो पुत्र-वधुएँ तेरे पूर्व जन्मके पुत्र है, जिन्होने न जाने कितनी विधवाओका सतीत्व हरण किया था।"

स्वर्गीय आत्मा विलीन हो गयी। वृद्धके चेहरेपर स्याही-सी पुत गयी। नारदबाबा वीणापर गुनगुनाते चले गये :

"अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाऽशुभम्।"

अनेकान्त, दिल्ली; फरवरी १९४८ ई०

■

मानव-सेवक

एक वार एक परोपकारी बन्धुके पास रात्रिके समय एक देव आया और नोटवुक दिखाकर बोला, "मैं इसमें उन महानुभावोके नाम लिख रहा हूँ, जो शुद्ध हृदयसे ईश्वरकी सेवा करते हैं। कहिए इसमें आपका नाम लिखूँ या नहीं।" परोपकारी बन्धुने नम्रतापूर्वक कहा, "क्षमा कोजिए महाशय, मेरा नाम इस डायरीमें न लिखें। मैं तो ईश्वरके बन्दोकी सेवा करता हूँ, यदि मनुष्य-सेवकोंकी कोई डायरी आपके पास हो, तब सहर्ष उसमें मेरा नाम लिख सकते हैं, क्योंकि

"ख़ुदा के बन्दे तो हैं हजारों वनों में फिरते हैं मारे-मारे।
मैं उनका बन्दा बनूँगा जिनको ख़ुदा के बन्दों से प्यार होगा।"

—इकबाल

सुवह उठकर देखा तो सर्वप्रथम स्वर्णाक्षरोंमें उसीका नाम डायरीमें अंकित था।

फ़रवरी १९३९ ई०

■

सन्तोषी

नव वर्षकी खुशीमें समस्त क्लर्कोंको वेतन बढाये जानेकी बात कहकर और उनसे बदलेमें खूब धन्यवाद प्राप्त करके साहबने यह मंगलसूचना जब एक साधारण कर्मचारीको दी, तब वह अत्यन्त नम्र और वीतराग भावसे बोला,

"श्रीमान्की मुझपर अत्यन्त कृपा है, पर वेतन न बढायें तो बडी दया होगी। वेतन बढते ही खर्च भी बढ जायेगा। जैसे-तैसे निराकुलता-पूर्वक जो जीवन व्यतीत हो रहा है, उसमे एक भूचाल आ जायेगा।"

धन्यवादका इच्छुक ऑफिसर जो हज़ारो रुपया पानेपर भी तृष्णाकी वैतरणी नदीमें बहा जा रहा था, तिनकेका सहारा पाकर सजग हो उठा।

फ़रवरी १९४० ई०

■

उल्लुओंकी नसीहत

मानसरोवरसे एक हंस और हसनी उडकर आकाशकी सैरको निकले तो मार्ग भूल गये। इधर-उधर भटकते हुए वे एक ऐसे प्रदेशमें जा निकले, जहाँ मनुष्य नही, मनुष्याभास रहते थे। सारा प्रदेश उजाड और भयावह वना हुआ था। न वहाँ कोई शीतल सरोवर था, न हरा-भरा वृक्ष। लाचार थके-माँदे हस-हसनीने शुष्क वृक्षपर ही वसेरा लिया। उसी ठूँठपर कुछ उल्लू भी बैठे हुए थे। उन्हीकी ओर मकेत करके हस बोला, "प्रिये! अब मुझे इस प्रदेशके उजाड होनेका कारण मालूम हुआ। यह प्रदेश इन उल्लुओकी कृपासे ही इस दशाको पहुँचा है। जहाँ उल्लू रहते है, वह देश वीरान हो जाता है।

पतिकी वात मुनकर हसनीने सम्मतिसूचक सिर हिलाया और उल्लुओकी ओर तनिक भ्रू-निक्षेप करके मुसकरा दी।

उल्लुओने यह सब सुना और वे चुपचाप दिल थामकर रह गये। सुवह होनेपर युगल जोडी उडनेको उद्यत हुई तो उल्लुओने हसनीको पकड लिया, और हससे बोले, "इसे कहाँ लिये जाता है, यह तो हमारी पत्नी है।"

हसनी चीख मारकर रह गयी, हसने अपना सिर पीट लिया।

उल्लू बोले, "रोने-धोनेसे कोई लाभ नही। चाहो तो इस प्रदेशके मनुष्योकी पचायत वुलाये लेते है, उसीका निर्णय हम मवको मान्य होगा।"

अपनी ही वस्तुके स्वामित्वका निर्णय दूसरोसे कराया जाये, हस यह सुनकर सिहर उठा। फिर भी मरता क्या न करता, चुपचाप स्वीकृति दे दी।

उस ठूँठ वृक्षके नीचे प्रदेश-भरके मनुष्य कहे जानेवाले पचायतमे शरीक हुए। यह प्रश्न गम्भीर था। हसनी, हंसकी वतायी जाये या उल्लुओकी, यह ऐसी पेचीदा गुत्थी थी जो सुलझाये न सुलझती थी। पंचो-

के चेहरे पृथ्वीकी ओर गडे हुए थे। सत्य कहते है तो अपने यहाँके उल्लू नाराज होते हैं, और इनको नाराज करना किसी भी हालतमें ठीक नही। असत्य निर्णय देते है तो धर्म आडे आता है। इतनेमें एक वृद्ध बोले, "भाइयो! प्रश्न कितना गम्भीर और जटिल है, यह आप जानते हैं, फिर भी यदि इसके निर्णयका अधिकार मुझको दें तो मैं क्षण-भरमें इस समस्याको सुलझा सकता हूँ।"

सब एक स्वरसे बोले, "बेशक चौधरी! आप ही हमारे सिरमोर हैं; जो कहोगे वही इस पंचायतका फैसला समझा जायेगा।"

तब चौधरी बोले, "देखो भाइयो! अगर हंसनी हसकी कहता हूँ तो यह परदेशी लेकर उड जायेगा, हमारा इससे कुछ भी लाभ न होगा; और उल्लुओकी कहता हूँ तो हसनी फिर यही रहेगी, इससे जो बाल-बच्चे होगे वे हस ही होगे। इस तरह यह प्रदेश जो उल्लुओका कहलाता है; धीरे-धीरे हसोका कहलाने लगेगा।"

हसनी उल्लुओकी सर्व-सम्मतिसे घोषित हो गयी। हस व्याकुल प्राण लेकर उडने लगा तो उल्लुओंने उसे भी पकड लिया और बोले, "मूर्ख! तू जो कहता था कि यह प्रदेश इन उल्लुओने उजाड दिया है; सो अब बता, यह प्रदेश हम उल्लुओने वीरान किया है या इन ज्ञानके ठेकेदार स्वार्थी मनुष्योने?"

हमने अपनी भूल स्वीकार की, तब हसनी उसे लौटाते हुए उल्लू बोले, "याद रख! उल्लुओस देशको इतनी हानि नहीं पहुँचती, जितनी कि स्वार्थी समझदारोंसे पहुँचती है। इन स्वार्थियोंके प्रत्येक श्वासमें ऐसे कीटाणु होते हैं जो सोनेके ससारको नरक बना देते हैं। ससारमें ऐसा कोई बीभत्स पाप नहीं जो स्वार्थी न कर सकें। ससारमें पापका उद्गम ही स्वार्थ है।"

उल्लुओकी नसीहत हस-हसनीने नतमस्तक होकर सुनी और भूलके लिए क्षमा माँगकर मानसरोवरको चले गये।

नवयुग, १९३४ ई० ■

नक़ली रंग

मिम्टर स्यारनाथको भूखे मरते हुए जब कई रोज हो गये, तब श्रीमती शृगालकुमारीके बहुत कुछ लानत-मलामतके बाद बेचारे शान्त प्रकृति, सन्तोषी जीव जानको हथेलीपर रखकर सिंह और चीतोंकी हृदय दहला देनेवाली दहाड सुनते हुए भी भोजनकी तलाशमें निकले और अपनी सनकमें अथवा किसी गीतके स्वर लगानेमें व्यस्त शहरकी ओर जा पहुँचे।

सूर्यके सन्ध्यासे पाणिग्रहण करते ही रजनी काली चादर डालकर सुहागरातके प्रबन्धमें व्यस्त थी। जुगनू सिरोंपर हण्डे उठाये इधर-उधर भाग रहे थे। दादुरोंके आशीर्वादात्मक गीत समाप्त भी न हो पाये थे कि कुमरीने सरोके वृक्षसे, कोयलने अमुआकी डालसे, बुलबुलने शाखे-गुलसे बधाईके राग छेड़े। श्वानदेव और वैसाखनन्दन अपने मँजे हुए कण्ठसे श्यामकल्यान अलाप कर इस शुभ संयोगका समर्थन कर रहे थे, झींगुर देवता सितार बजा रहे थे। कट्टो गिलहरी नाचनेको प्रस्तुत थी, पर रात्रि अधिक हो जानेसे वह तैयार न हुई। फिर भी उलूकखाँ वल्द बूमखाँ अपना खुरासानी और श्रीमती चमगीदडकिशोरी अपना ईरानी नृत्य दिखाकर अजीब समाँ बाँध रहे थे।

एक तो यो ही भूखके कारण पेटमें चूहे कबड्डी खेल रहे थे, इधर यह सब शोरो-गुल देखा तो मिस्टर स्यारनाथ मारे क्रोधके बौखलाकर रंगरेजकी दुकानमें घुस गये। दुकानमे चरण-कमलोंका रखना था कि श्रीमान्‌जी औंधे मुँह नीलके मटकेमें गिर पडे। राम-राम करके रात काटी। मारे बूके दिमाग सडा जाता था। प्रातःकाल रंगरेज आया तो हज़रत दम साधके पड़ गये। रंगरेजने देखा कि रंगके मटकेमें गीदड फँसकर मर गया

है, उसने टाँग पकडकर वाहर निकालकर फेंक दिया। थोडी देर तो मि० स्यारनाथ दम साधे पडे रहे, फिर कनखियोंसे इधर-उधर देख विद्युत्गतिसे अपने अरण्य-भवनको प्रस्थान कर दिया।

सूर्यकी प्रखर आभा और समीरकी थपकियाँ खाते ही मि० स्यारनाथका रंग जो सूखा तो एक विचित्र मन-मोहक आकृति वन गयी। स्यारनाथ अपने रूपको देखकर फूले न समाये।

अरण्य-निवासी ठाकुर शेरसिंह, मौलाना वाघहुसैन, पं० भेडिया-प्रसाद, चौवे भालूदत्त, मिस्टर शूकरनाथ, लाला गैण्डामल, चौधरी मृगलाल, सरदार चीतासिंह, सैयद खरगोशखाँ और श्रीमती लोमडीदेवीने मिस्टर स्यारनाथका यह जो रग देखा तो भौंचक्के रह गये! हे परमात्मा! ये किस लोकके रहनेवाले विशेष जन्तु हैं। भूलोकमें तो इस शानका कभी देखा न सुना। मालूम होता है यह तो ऊर्ध्वलोकसे ही पधारे हैं।

मि० स्यारनाथ पहले तो अपने पुश्तैनी शत्रुओंको देखकर भयभीत हुए। पर उन्हें स्वयं हक्का-वक्का देखकर वास्तविक वात ताड गये। इस स्वर्ण अवसरको खो देना उन्होंने मूर्खता समझी। अत उन्होंने वडी सजी-दगीके साथ उन सवको इशारेसे वुलाया और इशारे-ही-इशारेमें समझा दिया कि ईश्वरने मुझे अरण्य-चक्रवर्ती वनाकर भेजा है। आजसे सवको मेरी आज्ञा शिरोधार्य करनी होगी और मेरे रहन-सहन, भोजन आदिका राज्योचित प्रवन्ध करना होगा।" सवने दुम दवाकर अधीनता स्वीकार की।

थोडे दिन तो खूव चैनकी वशी वजी। वैठे-विठाये नित नये भोज्य पदार्थ आने लगे। मिस्टर स्यारनाथ भाग्यका ऐसा परिवर्त्तन देख मूर्ख पशुओंपर मन-ही-मन हँसते और अपने चातुर्य्य और साहसकी चिरजीव जम्बुककुमार और श्रीमती शृगालकुमारीसे खूब ही प्रशसा करते।

पर, 'सव दिन होत न एक समान।' वर्षा ऋतु आयी और स्यारनाथ-का वासन्ती रंग धुल गया। अरण्य-वासियोंने देखा कि चक्रवर्तीकी आकृति

तो गीदड रूपमें होती जा रही है। उन्हें अपने चक्रवर्तीकी आकृतिके इस तरह परिवर्तन हो जानेसे आश्चर्य हो ही रहा था कि दूसरे गीदडोंके रोनेकी आवाज़ सुनकर संस्कारके वशीभूत स्यारनाथ भी मुँह ऊँचा करके हू-हू पुकारने लगे। मुँह खोलते ही सारा भेद खुल गया। नाहरख़ाँने जो तमाँचा मारा तो स्यारनाथके प्राण-पखेरू उड गये।

मार्च १६४० ई०

■

अनधिकारी वक्ता

पण्डित गंगादीन पाण्डे पढे-लिखे वाजिबी-ही-वाजिवी थे, पर थे ज़हीन। यमुनाजीकी सीढियोपर बुहारी लगाते हुए उन्हें गगालहरी, विष्णु-सहस्र-नाम और हनुमानचालीसा कण्ठस्थ हो गये थे। कनागतोमें न्योता जीमते-जीमते सत्यनारायणकी कथा कहना सीख ली थी और व्याह-बारातोमें निरन्तर जाते रहनेसे पाणिग्रहण-सस्कार भी कराने लगे थे।

इतनी उन्नति कर लेनेपर भी भाग्य उनके प्रतिकूल ही बना रहा। पण्डित गगादीन-जैसे सरस्वती-उपासकके ऊपर उलूक-वाहिनी लक्ष्मीकी सदैव कोपदृष्टि रही। वारहमासो प्याऊपर पानी पिलाने, शिवालयमें और यमुनाकी सीढियोपर वुहारी लगाने और स्नान करनेवालोंको चन्दन घिसकर देने आदिमें कुल मिलाकर १२ रु० माहवारकी औसत पडती थी। घरमे कई प्राणी थे। इतने रुपयेका तो सूखा अनाज ही चाहिए। उसपर तुर्रा यह कि पाण्डेजी दो आने रोज़ चिनिया वेगम (अफीम) के लिए और दो आने रोज़ दूधके लिए ज़रूर रखना चाहते थे। ऐसी हालतमें सारे परिवारको महीनेमें प्राय निर्जला एकादशीके व्रतका अनायास ही पुण्य प्राप्त हो जाता था।

इन आये दिनोकी निर्जला एकादशीके व्रतोंसे ऊबकर पण्डित गगा-दीन पाण्डेने अपनी आजीविका वढानेके अनेक उपाय किये, परन्तु सव वेकार। उनके हृदयमें एक यही सन्ताप था कि संसारके भोले प्राणी गुणियोको क्यो नही पहचानते ? वहुत कुछ सोच-विचारके वाद पाण्डेजीने कथा वाँचकर आजीविका-उपार्जनका निश्चय किया।

पण्डित गगादीन शुभ लग्न-मुहूर्त देखकर सरेआम पीपलके पेडके नीचे

कथा कहने बैठे। उनके कथानक और वक्तृत्व शक्तिमें कुछ ऐसी मोहकता थी कि श्रोता मारे आनन्दके ऊँघने लगे। यहाँतक कि उनके दायें-बायें बैठे हुए दो श्रोता तो इतने निमग्न हुए कि उनका शरीर-ही-शरीर कथा श्रवण करनेको रह गया और प्राण, सुख-स्वप्न देखने लगे। उन दोनोंमें एक कपडेका और दूसरा अनाजका व्यापारी था। कपडेके व्यापारीने स्वप्नमे देखा कि दूकानपर ग्राहक खडा हुआ लट्ठा देख रहा है। भाव पूछनेपर बजाज़ने दस आने गज़ बतलाया, पर ग्राहक छह आने गज़ माँगने लगा। आख़िर बहुत ही हुज्जतके बाद कपडेका व्यापारी बोला,

"अच्छा न तेरे छह आने और न मेरे दस आने। बस आठ आनेमें फैसला हुआ," यह कहते हुए लट्ठेको फाड़नेके लिए कपडेके व्यापारी श्रोता-ने जो हाथ बढाया तो पाण्डेजीकी कथा-पोथीके पन्ने हाथमें आ गये और वे बीचमे-से चट दो कर दिये गये।

कपडेके व्यापारी इधर लट्ठा समझकर पाण्डेजीके पोथी-पत्रा फाड ही रहे थे कि उधर उसी समय अनाजके व्यापारीने स्वप्नमें बिज़ारको अपनी दूकानका अनाज खाते देखा तो चट डण्डा उठाकर पाण्डेजीपर बिज़ारके भुलावेमें दनादन फटकारने लगा और शोर मचाने लगा, "क्या तेरे लिए ही यह अनाजकी ढेरी लगायी थी।"

पण्डित गगादीन पाण्डेने अपनी और पोथी-पत्रेकी यह दुर्गति देखी तो जान बचाकर तावडतोड भागे और फिर उनकी नानी मरे जो कभी बगैर पढे-लिखे होते हुए कथा बाँचने या उपदेश देनेका दुस्साहस किया हो।

वीर, दिल्ली; २ मार्च १९४० ई०

■

पापका बाप

छज्जू जाट अपने खेतके मचानपर बैठा हुआ हुक्का पी रहा था कि उसके कानमें खन-खनकी आवाज आयी। आवाजकी सीधपर छज्जूने जाकर देखा तो उसके मुँहमें पानी भर आया। एक गेरुआ वस्त्रधारी साधु बडी सावधानीसे सौ रुपये गिनकर अपने सरके साफेमें बाँध रहा था। रुपयोंको देखकर छज्जू जाटका जी तो काफी मचला, पर करता क्या? लाचार मुँह लटकाये, दबे पाँव अपने खेतमें लौट आया।

छज्जू जाट अपने मचानपर बैठा हुआ इस श्वेत वर्णधारी कलयुगी अवतारके ध्यानमें निमग्न था कि 'जय बम भोले' की आवाज़ सुनकर चौंक पडा। देखा तो वही साधु याचनाके भावसे सम्मुख खडा हुआ था। छज्जू जाट साधुकी इस हरकतसे कुछ कुट-सा गया। उसने सोचा. "खडी फ़सलको टिड्डी चाट गयी, महाजनने कर्ज़में बैल खुलवा लिये, भरे हुए अन्नको लगानवाले उठा ले गये, फिर बहनको भात और लडकीको छूचक देना है और पास फूटी कौडी नही है, फिर भी सब्र किये बैठा हूँ। और एक यह सण्ड-मुसण्ड है कि किसी बातकी फ़िक्र नही, सौ रुपये गाँठमें लिये फिरता है और फिर भी माँगनेकी हविस बनी हुई है। इसे कुछ नसीहत देनी ही चाहिए"—यह सोचते हुए उसे एक जट्ट-विद्या सूझ आयी।

छज्जू जाट अपने मचानसे उतरकर बहुत दीनतापूर्वक नमस्कार करते हुए बोला, "महाराज! धन्नभाग जो तुम पधारे, मेरे ऐसे नसीब कहाँ? दो रोज़से जाटनी भूखी बैठी है, उसकी ज़िद है कि जबतक किसी पहुँचे हुए महात्माको न जिमा लूँगी भोजन न करूँगी। गाँवके इर्द-गिर्द चार-चार पाँच-पाँच कोस तक खोज फिरा, पर कोई महात्मा नही मिला, यूँ भुखमरे सैंकडों। मेरे पूरबले पुन्न कर्मोंसे ही भगवान्‌ने तुम्हें भेजा है।"

साधु महाराजने अपनी अपूर्व आवभगत देखी तो फूले न समाये।

शिकार फँसता हुआ देख छज्जू जाट बोला, "तो महराज ! आजका नौता कबूल करो, बडो किरपा होगी ।"

साधु महाराजको भोजनकी इच्छा तो थी नही, भोजन तो वह पहले ही कही टाँक आये थे । वह तो नकद नारायणके इच्छुक थे । बोले, "बेटा ! भोजन तो हफ्तेमे हम एकाध बार ही करते हैं, अगर कुछ नशे-पानीका प्रबन्ध कर सको तो··· !"

छज्जू जाट साधुके मनोभाव ताड गया, बीच ही में बात काटकर बोला, 'दीनबन्धु ! भोजनके साथ एक रुपया दच्छिना भी हाथ जोडकर दूँगा । आप मुझे निरास न करें ।"

साधु महाराजने दक्षिणाका नाम सुना तो बाँछें खिल गयी । बोले, "भैया ! आज तक तो हमने कभी किसीके यहाँ जोमना स्वीकार किया नहीं, पर आज तेरे कारन हम अपनी आन छोडते है, क्या करें लाचारी है, भगवान् भगतके बसमे होते आये ।"

साधु महाराजने दूध, रबडी, खीर, हलुआ, उदर-मध्य रख लेनेके बाद जाट और जाटनीको अनेक आशीर्वाद दिये । भर पेट आशीर्वाद ले चुकनेके बाद छज्जू जाट अपनी स्त्रीसे बोला,"जा, रुपया नारियल साधु महाराजके चरणोमें चढाकर अपने जनमको सार्थक कर ले ।"

जाटनी खुशी-खुशी अन्दर गयी और फिर बाहर आकर बोली, "अन्दर हाँड़ीमें तो रुपये नही हैं ।"

छज्जू जाट आँखें तरेरकर बोला, "है, रुपये नही है, कहाँ गये, अभी-अभी तो सौ रुपये गिनकर मैंने हांडीमें रखे थे ।"

जाटनी सरल स्वभाव बोली, "तो मैं क्या जानूँ ? जहाँ तुमने रखे हो, वहाँ देख लो । मुझे तो मिले नहीं ।"

छज्जू जाट लपककर अन्दर गया और तनिक इधर-उधर देख-भालकर माथा पकडे हुए बाहर आया और "हाय मै लुट गया, बर्बाद हो गया",

कहकर ज़ोर-ज़ोरसे रोने लगा। रोनेकी आवाज़ सुनी तो अडोसी-पडोसी इकट्ठे होकर रोनेका कारण पूछने लगे। ब-मुश्किल छज्जूने बतलाया कि महाजनसे अपने बैल वापस लानेके लिए थोडी देर पहले हांडीमें सौ रुपये गिनकर रखे थे। अब जो महाराजको एक रुपया दच्छिना देनेके लिए देखा तो उसमें फूटी कौडी भी नही।

पडोसी छज्जूकी गरीबीके कारण सहानुभूति रखते थे। सुना तो सन्न रह गये। सबके सब एक स्वरमे बोले, "क्या कोई बाहरका आदमी घरमे आया था।"

छज्जू जाट उसी तरह मुँह लटकाये बोला, "बाहरका आदमी कौन आता ? बाबाजी, जाटनी और मेरे सिवाय आज यहाँ सुबहसे चिडिया तक नही फटकी।"

पडोसी बोले, "तो भैया ! घबराओ मत। तनिक इस साधुकी तलाशी तो लो। इस भेसमे सैकडों उठाईगीरे चोर-उचक्के फिरते हैं।"

छज्जू जाट गिडगिड़ाकर बोला, "भाई, ऐसा मत कहो, पाप लगता है। ये साधु तो बडे भारी महात्मा हैं। मेरे बहुत रिरयानेपर नौता जीमने-को तैयार हुए थे।"

पड़ोसी तुनककर बोले, "ऐसे सैकडो महात्मा जूतियाँ चटखाते फिरते हैं। दिनमें ये लोग भीख माँगते हैं और रातको चोरी करते है। अच्छा, तू न ले तलाशी, हम लिये लेते है। पाप भी लगेगा तो कुछ चिन्ता नही। दो-चार रोज़ नरकमें रह आवेंगे।"

इतना कहकर पडोसियोने साधुकी जेब, अण्टी आदि सब देख डाली, पर रुपये न मिले। छज्जूने देखा कि सिरके साफेको किसीने नही देखा। अत मायेपर हाथ मारकर बोला, "बस जी, जो होना था सो हो गया, अब महाराजके साफेको तो न उतारो।"

छज्जू बात पूरी कहने भी न पाया कि एक जल्दबाज़ने महाराजके साफेमें जो झटका दिया तो रुपये खन-खन बिखर गये। पडोसियोंने जल्दी-जल्दी सब रुपये हाँडोमे भर दिये। लालची साधु अपना-सा मुँह लेकर जब जाने लगा तो छज्जू जाटने पाँवोकी रज अपने मस्तकपर लगाते हुए कहा, "तो महराज, अब कब दरसन दीजिएगा।"

लालची साधु नीची नज़र किये हुए बोला, "जब सौ रुपये इकट्ठे हो जायेंगे।"

बच्चे पीछेमे तालियाँ बजाकर चिल्लाये

"लोभ पापका बाप बखाना"

वीर, दिल्ली; १३ जनवरी १९४० ई०

■

पाँच रुपयेकी अक़्ल

जुम्मन नाईके फिजूलखर्च होनेके सबब उसकी बीवी अल्लारक्खी बडी परेशान रहती थी। घरमे भुनी भाँग नही, पर जुम्मनके यहाँ एक-न-एक मेहमान बना ही रहता था। जुम्मन खुद इस मुसीबतसे नजात पाना चाहता था, मगर करता क्या? आदतसे लाचार था। बी अल्लारक्खीकी रात-दिन जली-कटी बातें सुनते-सुनते जुम्मनके नाको दम आ गया। तब कही खुदा-खुदा करके उसने पाँच रुपये जोडकर अपनी बीवीको दिये। पाँच रुपये पाकर बी अल्लारक्खी फूली न समायी। मारे खुशीके उसके जमीनपर पाँव नही पडते थे। वह इस मुबारक दिनके लिए अल्लाह-मियाँका लाख-लाख शुक्रिया अदा ही कर रही थी कि जुम्मन बाहरसे हाँफता हुआ आया और बोला,

"जल्दी कर, वह रुपये कहाँ है? जल्दी निकाल, मैं बाजारसे सौदा-सुलफ़ लाऊँ और तू..."

रुपयोके देनेका हुक्म सुनते ही बी अल्लारक्खीके शरीरपर मानो चिनगारी गिर पडी। वह बीच ही में बात काटकर बोली,

"आखिर इस बौखलाहटकी कुछ वजह भी?"

"अरे वाह! हमारे यहाँ उस्ताद आये हैं और तुझे बौखलाहट दिखाई देती है।" जुम्मन ज़रा आँखें तरेरकर बोला,

"उस्ताद आये हैं तो क्या हुआ? कोई नयी बात तो है नही। यहाँ तो रोज़ ही एक-न-एक भुखमरा पडा रहता है।" बी अल्लारक्खी फिर ज़रा आँखें मटकाकर बोली, "दुतकार क्यो नही देते? भूखो मरकर कबतक मेहमाँनवाज़ी करोगे? 'तनपै नही लत्ता पान खायें अलबत्ता।' कुछ गाँठकी अक़्ल भी है या उम्र भर चोंच ही बने रहोगे?"

जुम्मन ज़रा मुसकराकर बोला, "लो चुडैलकी बातें, हमें चोंच

समझती है ! तीतर, कबूतर, बटेर लडाना हम जानें, पतग उडाना हम जानें, मर्सिये गाना हम जानें, ग़रज़ हरफनमें उस्ताद हैं, फिर भी कहती है—क्या उम्र-भर चोच बने रहोगे ? अरे हमने तो वो-वो सुहबते की है कि फ़रिश्ते भी आकर अक्ल सीखें ।"

बी अल्लारक्खी हँसीको ज़ब्त करते हुए बोली, "बेशक, मुझसे ग़लती हुई । आखिर मैं भी तो सुनूं आज कौन साहब तशरीफ लाये हैं, जिनके लिए · "

मियाँ जुम्मन बीचमें ही बात काटकर बोले, "अरे, क्या तू आज भी ऐसा-वैसा मेहमान आया हुआ समझती है ? आज मेरे उस्ताद आये है, उस्ताद ! इन्हीकी बदौलत तीतरबाज़ी, पतगबाज़ीका इल्म हासिल हुआ है । खुदा-क़सम, अपने फ़नमें यकताँ है । विलायत, इग्लैण्ड, बम्बई, हिन्दुस्तान, लाहौर, पजाब, कलकत्ता, बगाल, दूर-दूरमें सरनाम हैं । इनकी जूतियो-की कोई हिरस तो कर ले ।"

बी अल्लारक्खी जुम्मनकी इन शेखचिल्लीवाली बातोसे रही-सही और भी जल-भुन गयी । तुनककर बोली, "तभी तो अम्माँ कहा करती थी, 'मेरे ललाके तीन यार, धोबी, तेली और मनिहार' । पतगबाज़ तीतरबाज़ ही उस्ताद हुए, या कभी किसी गुणीके पास भी बैठे ?"

जुम्मन और रोज़की तरह निखट्टू तो था नही, जो चुपचाप खडे-खडे सुना करता ? आज ही तो उसने चमकते हुए पाँच रुपये बी अल्लारक्खी-को लाकर दिये थे, फिर क्यो किसीकी जली-कटी सुनता । वह दाँत भीचकर बोला,

"रुपये निकालती है सीधो तरहसे, या जमाऊँ सुसरीके लात ?"

बी अल्लारक्खी पिटनेकी आवश्यकतासे अधिक आदी बन चुकी थी, मगर न मालूम उसे क्या सूझी । सिरको नचाती हुई बोली, 'ऐ वाह ! तुम तो खफा हो गये जो ज़रा-सा मैंने हँसी-हँसीमें छेड दिया तो, लो यह

एक पैसा, इसका तम्वाकू लाकर उन्हें जरा हुक्का तो पिलाओ, इतनेमे खोदकर रुपये निकालती हूँ।"

जुम्मन इठलाता हुआ तम्वाकू लेने चला गया ;

निर्धनतामे रही-सही गाँठकी अक़्ल भी चली जाती है, पर साहूकारीमे वुद्धूके सामने भी अक्ल हाथ वाँधे खडी रहती है। वी अल्लारक्खीके पास भी आज पाँच रुपयेकी तरावट थी, चट उसे भी पाँच रुपयेवाली अक्ल सूझ गयी। वह परदेकी आडमे-से जुम्मनके उस्तादसे रोनी आवाज़में वोली, "खुदाके वास्ते तुम्ही अपने शागिर्दको नेक राहपर लाओ, मुझ दुखियापर करम होगा, अगर आपने उसे अल्लाहतालाके अजावसे वचाया।"

"ऐसी क्या वात है ? आखिर कुछ माजरा भी तो सुनूँ।" उस्तादजी जरा वडप्पनके साथ वोले।

वी अल्लारक्खी तनिक गिडगिडाकर वोली, "निगोडी कुछ वात भी हो। कहूँ तो घरकी साख जाये, न कहूँ तो वदनामी, मेरी सव तरहसे मुश्किल।"

उस्तादजी जरा अपनी कूचीदार दाढीपर हाथ फेरते हुए वोले, "नही, वेटी! हमसे क्या छिपाव, हम तो घरके-से आदमी हैं। अपने ससुर और वापकी तरह हमको भी समझ।"

"ससुर और वाप तो समझाते-समझाते मर गये, पर इनके एक नही लगी। खुदा जाने किस मरदूदसे यह कुलच्छन सीखे हैं।" वी अल्लारक्खी और जरा मचलकर वोली।

"वेटी, तू हमारे मरे हुएका ही मुँह देखे, जो हमसे न कहे।" उस्तादजीने जरा वुजुर्गाना लहजेमें कहा।

वी अल्लारक्खी निशाना ठीक लगते देख वोली, "लो, जव कसम दिला दी तो मजवूरन कहना ही पड़ा कि जरा अपने शागिर्दसे चौकन्ने रहना। ये पहले तो आये-गयेकी खूव खातिर-तवाजा करते है, फिर न जाने इनको क्या वहशत सवार हो जाती है कि उसके अचानक नाक-कान कतर लेते है।

खुदाकी पनाह, न जाने यह रोग इन्हें क्योकर लग गया ? मैं तो सारी रिश्तेदारियोमें बदनाम हो गयी। अच्छे मियाँ, कोई आसेब-वासेबका तो परछावाँ नही है ? ज़रा देखना, मैं तुम्हारे पाँवो पड़ती हूँ।"

इतना कहकर वो अल्लारक्खी तो परदेके पाससे खिसक आयी। उधर उस्तादजीके पेटमें चूहे कबड्डी खेलने लगे। अजीब दुविधामे जान थी। "रहें या चलते बनें ? चलते क्यो बनें ? आखिर अपना शागिर्द है, क्या हमीने यह शरारत करेगा ? कर भी दे तो क्या ताज्जुब ? बावला कुत्ता कब अपना-पराया देखता है, उसकी ज़रा-सी बात होगी और यहाँ उम्र-भरको नकटे-बूचे हो जायेंगे। सात शुबरातकी झाड़ू और हुक्केका पानी ऐसी मेहमाँनवाज़ीपर।"

इसी तरह न मालूम क्या-क्या ऊँच-नीच सोचते हुए खूँटेसे बंधी अपनी टटुवानी खोलकर चलते बने। जुम्मन नाई ख़ससे मढे हुए हुक्केको लखनवी तम्बाकूसे मुअत्तर करके लाया तो उस्तादजीको न पाकर बीवीसे पूछा, 'उस्ताद कहाँ गये ?'

बी अल्लारक्खी मुँह बिचकाकर बोली, "ऐ वाह, अच्छे उस्तादजी-को लाये, शर्म न लिहाज, निगोड़ा कहते भी न लजाया।"

जुम्मन घबराकर बोला, "एँ! आखिर क्या हुआ ?"

बी अल्लारक्खीने मटककर कहा, "होता क्या ? नासपीटा बोला, ज़रा पेटीमें-से उस्तरा निकाल दो। मैंने हाथके इशारेसे मना कर दिया। बस इतनी-सी बातपर मुझे और तुम्हें गालियाँ बकता हुआ टटुवानीपर लदकर चलता बना।"

जुम्मन दाँत किचकिचाकर बोला, "अरे तो बेवकूफ़की बच्ची! इसमें शर्म और लिहाज़की क्या बात थी ? दे क्यो नही दिया ? एक उस्तरा क्या, उनके ऊपर सैकड़ो उस्तरे निछावर कर दूँ।"

इतना कहकर जुम्मन पेटीमें-से उस्तरा निकालकर और उसे खोलकर उस्तादजीको मनानेके लिए दौड़ा। उस्तादजीने मुड़कर देखा कि जुम्मन उस्तरा लिये हुए आ रहा है तो उन्हें बी अल्लारक्खीकी बातका पूरा यकीन हो गया। उन्होंने अपनी टट्टुवानीको और भी तेज़ कर दिया। उस्तादजीकी टट्टुवानी दौड़ते देख जुम्मन उस्तरा दिखाकर चिल्लाने लगा, "उस्ताद, ज़रा बात तो सुनो", पर उस्ताद किसकी सुनते थे? उन्हें अपने नाक-कानकी फ़िक्र लगी हुई थी! आखिर जुम्मन लाचार मुँह लटकाये घर आ गया। जुम्मन उदास था और अल्लारक्खी खुश। आखिर उस नाक-कान कतरनेवाली बातकी ऐसी शोहरत हुई कि फिर किसी आवारा मेहमानकी जुम्मनके यहाँ आनेकी हिम्मत न हुई।

वीर, दिल्ली; ६ अप्रैल १९४० ई०

■

गपोड़शंख

एक नवावसाहवको झूठ वोलनेका रोग था। अपने पतिकी इस वीमारीसे वेचारी वेगम वडी परेशान थी। हर-एक वातकी हद होती है, मगर नवावके गप्प उडानेकी कोई हद न थी। शहर-भरमें वह गपोडशख-के नामसे मशहूर थे, और सच वात तो यह है कि उन्होने शायद ही कभी अपने जीवनमें सच वोला हो। नवावसाहव रुपये-पैसेवाले आदमी थे, इसलिए उनके खुशामदियोकी भी कमी न थी। वे लोग झूठे वढावे दे-देकर उन्हें वाढपर चढाये रखते थे।

एक रोज़ यारोका मजमा लगा हुआ था। मुंशी वदहवासराय, शेख चिरागअली, मियाँ गुलखैरू करीनेसे वैठे हुए नवावसाहवके सामने दूनकी हाँक रहे थे कि मियाँ गुलखैरू जम्हाई लेते हुए और चुटकी वजाते हुए नवावसाहवकी तरफ मुखातिव होकर वोले, "हुजूर आज तो कोई नयी वात सुनाइए।"

फरमाइशकी देर थी कि गपोडशख वेकसीके स्वरमें वोले, "यार क्या नयी वात सुनायें! हम तो वदकिस्मत हैं जो हिन्दोस्तान-जैसे नाकदरे देशमें पैदा हुए। अगर विलायतमें हुए होते तो इल्मकसम किसी वादशाहके नज़दीक कुरसी मिली होती।" वदहवासराय गपोडशखकी हांमें हाँ मिलाते हुए वोला, "वेशक, इसमें क्या शक है? वहाँ तो कहते हैं, आप-जैसे ज़हीन इनसानका जीते-जी दिमाग खरीदकर अजायवघरमें रख लेते है।"

गपोडशंख इस मीठे मज़ाकको न समझकर मारे आत्म-गौरवके शेखीमें आकर वोले, "यारो, कलकी वात तो सुनो ·

"हम अपने मुश्की घोडेपर चढकर कल शिकारको गये, तो आँधीने वह जोर पकडा कि हाथको हाथ दिखाई न देता था। हमने जो गलतीसे घोडेको हण्टर लगा दिया, तो वस गरम हो गया। लगा हिरनको तरह चौकडियाँ भरने। हम लाख उसके रोकनेको कोशिश करते थे, मगर वह किसको सुनता था ?"

वदहवासराय तो हुजूर आपने भी तो गजव कर दिया। मुश्कीको हटरको वर्दाश्त कहाँ ? वह तो कुश्त-ए-कालोन खाकर और शर्वते-शवनम पीकर इतना वडा हुआ है। उसने जो लाड-प्यारकी जिन्दगी वसर की है, वह किसी नवावको मयस्सर नही। वडे हुजूरके छूचकमे हुजूरकी दादी साहवा उसे अपने मकेसे लायी थी। कुत्ते-जैसे कदमे माशाअल्लाह वह इसी घरमें इतना वडा हुआ है।"

चिरागअली : "मुश्को घोडेके क्या कहने ! दूर-दूरमे अपना सानी नही रखता। नाजुक मिजाज इतना कि खुदाकी पनाह ! उस रोज घासका गट्ठर लिये हुए हजरत झेरेमें गिर पडे, तो दो रोज तक उठानेका नाम नही लिया। वह तो कहिए खैरियत हुई, जो मनाने-पुचकारनेसे उठ आये, वरना गजब ही हो जाता।"

गुलखैरू "अमाँ, मुश्की घोडेकी हर-एक चीज लाजवाव, उसकी सारी आदतोमें वाँकपन ! उसकी हिनहिनाहट कोयलकी वोलती वन्द करे, रूप उसका सब्जपरीको भी शरमाये, उसकी पसलीकी उभरी हुई हड्डियाँ चम्पेकी कलियोको दूर विठायें, अन्दरको घुसी हुई छोटी और गोल आँखें कवूतरको भी नीचा दिखायें और उसकी खिरामाँ-खिरामाँ चाल, लखनऊके नवाव, वाजिदअलीशाहसे भी शोखीभरी ! अल्लाह झूठ न वुलाये, हुजूरके मुश्की घोडेकी हिर्स कावुली गधा तो कर ले ?"

वदहवासराय (वीच ही में वात काटकर) : "यार, हो तुम निरे चोच हो। श्यामकल्यान गाते-गाते यह भैरवीको तान क्यों छेड दी ?

तुरकी घोडेसे और कावुली गधेसे क्या निस्वत ? सच कहते हैं मजलिसे-अदबमे ऐरे-गैरोको नही बैठने देना चाहिए।"

गपोडशख· "भाई, इसपर क्यो खफा होते हो। यह भी किसी हद तक ठीक ही कहता है। पहले कावुली गधे शाह ईरानकी सवारीमें रहते थे।"

गपोडशखका इतना कहना था कि चारो तरफसे 'खूव ! खूब'की बौछारें होने लगी। वल्लाह ! कैसा मीठा फिकरा है ? गुलामके कुसूरको वफादारीमे शामिल करना, इसे कहते हैं—गरीवपरवरी ! किसी शाइरने खूब फ़रमाया है·

"जो वात की खुदा की कसम लाजवाब की'

"हाँ, तो हुज़ूर ! फिर क्या हुआ ?"

गपोडशखको पल-भर पहलेकी बात याद नही रहती। वह इस चक्करमें पडे कि अव मैं क्या कहूँ, न मालूम क्या कह रहा था। इस बात-को गुलखैरू ताड गये। उन्हें खुद नही मालूम कि कौन क्या बक रहा है, जल्दीमें बोल उठे, "जो फिर उस बैंगनका क्या हुआ ?"

चिरागअली "यार, तुम भी हो निरे खुश्के। वेगुन आदमी भी कोई आदमी है। फिर भला उसका यहाँ गुनियोकी महफ़िलमें ज़िक्र ही क्या ?"

गपोडशख "क्यो जी, मियाँ गुलखैरू, तुम्हें इन्होने ख़ुश्का किस लुग़ात (शब्दकोष) की रूसे कहा ?"

गुलखैरू "हुज़ूर, मेरी पैदाइश, खुश्का शहरको है, इसलिए मुझे यह लोग इस प्यारे नामसे पुकारते है।"

गपोडशख "भाई, यह खुश्का कौन-सा शहर हुआ, यह नाम तो आज ही सुना।"

खुश्का किस बलाका नाम है, वह स्वयं नही जानता, फिर गपोडशख-को क्या खाक वताता। फिर भी दाँत निपोरकर बोला, "वाह हुज़ूर,

वाह ! गुलामके सामने नादान बनकर उसका हौसला बढ़ा रहे हैं। बन्दानवाज़ ! यूँ चींटीपर पसेरी डालकर उसे एहसानसे इतना न दबायें कि वह निकल ही न सके।"

बदहवासराय "वाह, मैं सदके जाऊँ हुज़ूरके इस भोलेपनपर :

इस सादगी पै कौन न मर जाय ए ख़ुदा !
लड़ते हैं और हाथ में तलवार भी नहीं !

अच्छा साहब, आपको भोलापन मुबारक हो, लो हमी बताये देते हैं। यह उसी खुरासान शहरका मुख़फ्फ़फ़ (संक्षिप्त रूप) है, जहाँ मैं हुज़ूरके हमराह बारातमें गया था। वल्लाह ! कैसा सुहावना पहाड़ी मुल्क था कि तबीयत हरी हो गयी।"

यकायक गपोड़शंखको अपनी बात स्मरण हो आयी। बोले, "वाह यारो, कहाँकी बात कहाँ ले उड़े कि अस्ल मज़मून ही ख़ब्त कर दिया। अच्छा, अब कोई साहब बीचमें न बोलें। हाँ, तो मुश्की घोड़ा चाबुक लगते ही हवासे बातें करने लगा। नदी, नाले, कुआँ, बावली, गरज़ जो रास्तेमें पड़ा, फर्लांगता हुआ चला गया। यहाँतक तो हमें भी कुछ बुरा महसूस नही हुआ, पर जब पीपलके पेड़पर-से छलाँग मारी, तो ईजानिबके भी होश खता हो गये। वह तो हमी थे, जो सवारी गाँठे रहे। ख़ैर, जब मुश्की-ने पीपलपर-से छलांग मारी, तो हम भी गरम हो गये। फिर हमें ताब कहाँ ? हमने अपनी बन्दूक सीधी कर ली। हम चाहते थे कि घोड़ेको गोली मार दें कि सामने हिरन दिखाई दे गया, बस गोली दनसे दाग दी। एक ही गोलीमें हिरनका बाँया पाँव और कान ज़ख्मी कर दिये।"

इतना सुनना था कि यार लोग बेतहाशा चीख उठे, "वल्लाह ! क्या सुलझा हुआ निशाना है। एक ही गोलीमें पांव और कान ज़ख्मी कर दिये। इसे कहते है शिकारका शौक़। जीवका जीव न मरा और शौक़का

शौक पूरा हो गया। अल्लाह जानता है, हुजूरके वे सधे हुए हाथ है कि चूमनेको जी चाहता है।"

चिरागअली 'सधे हुए हाथोके क्या कहने ? चाहें तो बन्दूककी गोलीसे नोकेमिज़गाँ (पलकके बालकी नोक) उडा दें, और आँखको मालूम तक न हो।"

बेगम किवाडकी आडसे सब कुछ सुन रही थी। अब उससे अधिक बरदाश्त न हो सका, वह मारे गुस्सेके लोटन कबूतर हो रही थी, कडककर बोली, "वाह रे खुशामदी टट्टुओ, क्या हाँमें-हाँ मिलायी है।"

बेगमकी आवाज़ सुनी तो गपोडशखकी नानी मर गयी। भीगी बिल्ली-की तरह इधर-उधर देखने लगे। खुशामदी लोग भी इधर-उधर खिसकने-को हुए कि उनमें-से चिरागअली बोला, "समझमे नही आता, हुजूरने ऐसी कौन-सी झूठ बात कही है, जो बेगमसाहबाके दुश्मनोको इतना सदमा पहुँचा है।"

बेगम डाँटकर बोली, "झूठ नही तो क्या सच है ? पीपलके पेडको घोडा फलाँग गया, एक ही गोलीमे हिरनका पाँव और कान जख्मी कर दिये। कहाँ पाँव कहाँ कान ! निगोडी झूठ बोलनेमे भी अक्लकी ज़रूरत है।"

चिरागअली "बस, इतनी जरा-सी बातपर हुजूरको झूठा समझ लिया। उस रोज तो मैं भी हुजूरके हमराह सायेकी तरह साथ था। वाकया तो हुजूरने सच-सच ही बयान किया है। जैसा कि हुजूरने फरमाया कि आँधी उस रोज बडे ज़ोरसे आयी, बस उस आँधीमें एक पीपलका दरख्त रास्तेमें गिर पडा और घोडा उसे आसानीसे फलाँग गया और जिस वक्त हुजूरने गोली चलायी, उस वक्त हिरन अपने बाँयें पाँवसे कान खुजा रहा था, इसलिए गोली पाँव और कानको जख्मी करती हुई निकल गयी।"

इतना सुनना था कि यारोंने आसमान सिरपर उठा लिया, "वल्लाह क्या कहना है ! आलिमोकी वात समझनेके लिए भी आलिम होनेकी ज़रूरत है ।"

वेगम वेचारी झेंपकर अन्दर चली गयी ।

चिरागअलीकी हाज़िरवयानीसे नवाव साहवकी वाँछें खिल गयी । मज़ेमें आकर वोले, "चिरागअली साहव, आप तो हाज़िरजवावीमें कमाल रखते है ।"

चिरागअली . "अरे साहव, मैं क्या कहूँ, यह सव वुजुर्गोकी जूतियो-का तुफ़ैल है । हमारे वावाके खाला़के नानाकी फूफीके वहनोईके मामू लखनऊके नवाव साहवके यहाँ मुसाहिव थे । एक रोज़ नवाव साहवके हमराह सैरको तशरीफ ले गये । घूमते-फिरते रात हो गयी तो नवाव साहवने जो गीदडोंके रोनेकी आवाज़ सुनी तो हैरतमें आकर पूछ वैठे, 'अमाँ यह जानवर क्यो रो रहे है ?' तव हमारे मरहूम मोहतरिमने फरमाया कि, 'हुजूर, सरदीकी वजहसे रो रहे है ।' रहमदिल नवाव साहवने कम्वल वँटवानेके लिए हुक्म दिया तो हमारे मरहूम पुरखा वोले, 'ऐ वाह हुज़ूर, कम्वल तो अदना आदमी दे जाते है । आपकी तरफसे दुशाले वँटने चाहिए । कहनेकी देर थी कि नवाव साहवने लाखो रुपया खैरातके लिए अता फरमा दिया । यह तो हुज़ूर भी जानते हैं, दुशाले जान-वरोको क्या वाँटे जाते, यह तो सरकारको गरीवपरवरीका एक तरीका था । कुछ अरसेके वाद सैरको फिर गये, तो आदतके मुताविक गीदडोको तो रोना था ही । रोना सुनते ही नवाव साहव वोले, 'अव यह जानवर क्यो रो रहे है ?' तव हमारे मरहूम पुरखाने, (खुदा उन्हें जन्नत वख्शे) फरमाया, 'हुजूर ये लोग रो नही रहे है । दुशाले मिल जानेसे सरकारकी जान-माल-की दुआ माँग रहे है ।' हुजूर, ऐसे हाज़िरजवाव थे हमारे पुरखा । हुज़ूर, शेखीकी वात नही है । अकवर वादशाहके दरवारी मुल्ला दोप्याजा और राजा वीरवलसे हमारे खानदानका शज्र. (वंशवृक्ष) मिलता है ।"

वदहवासराय : "शेख साहब, आपने यह एक ही दूनकी हाँकी ! कुजा बीरबर, कुजा आप ! वह हिन्दू थे और आप हैं मुसलमान ।"

गुलखैरू "मियाँ मुशीजी, पहले किसीकी पूरी बात सुन तो लिया करो, ख्वामहख्वाह बीचमें कूद पडे। चिरागअली साहब बजा फरमाते है। मैं खुद बचपनसे सुनता आया हूँ कि बीरबरके किसी नौकरने शेखजीके गाँवसे खाट खरीदी थी। तभीसे यह लोग एक कुनबेकी तरह रहते आये है।

नवाब · "मियाँ गुलखैरू, तुम भी कमाल करते हो, क्या खाट खरीदनेसे भी कुनबेदारी हो जाती है ?"

चिरागअली "इस चौदहवी सदीकी बात जाने दीजिए, आजकल तो सगे भाई कट मरते हैं। पहले वक्तोमें गाँवकी बेटी सारे गाँवकी बहन-बेटी होती थी। किसीका दामाद आया और गाँव-भरने उसकी अपने दामादकी तरह खातिर-तवाज़ो शुरू कर दी। हमें अपना बचपना अच्छी तरह याद है। नथिया हलालखोरीको ताई, सुखिया चमारीको चाची, नन्ही धोबनको फूफी और रमजानी सक्केको हम ताया कहा करते थे। इसी तरह हमारे वालिद सबसे अदब-कायदेसे बोलते थे, क्या मजाल किसीका नाम मुँहसे निकल जाये। पुराने वक्तोकी बात ही निराली थी।"

नवाब · "मियाँ गुलखैरू, और आप किस खानदानसे निस्बत रखते हैं ?"

गुलखैरू "हुज़ूर, हमे तो अपने खानदानका कुछ पता नही, वालिद साहबके फौत होनेके सात माह बाद हमें तो इस सराये फानीमें अल्लाह मियाँने उतारा था। मगर सुनते हैं शेर अफगन और हमारे बाबा खाला-ज़ाद (मौसेरे) भाई थे।"

नवाब . "मियाँ शेर अफगन, और आपके बाबाके खालाज़ाद भाई ! वोह क्योकर ? तब तो यार तुम बहुत बडे आदमी निकले। अमाँ यह बात अबतक छिपाये क्यो रखी ?"

गुलखैरू "हुजूर, अपनी तारीफ क्या अपने मुँहसे अच्छी लगती है? वह तो हुजूरने पूछा तो वातोंके सिलसिलेमें कह बैठा वरना मरते दम तक ज़ाहिर न करता।"

नवाब "हाँ, तो शेर अफगन आपके वावाजानके खालाज़ाद भाई क्योंकर थे?"

गुलखैरू "हुजूर, आपको नही मालूम? यह किस्सा तो सारे विलायतमें, लन्दनमें, वम्वईमें, हिन्दुस्तानमे, लाहौरमें, पंजावमें, दिल्लीके चाँदनी चौकमें वच्चे-वच्चेके विरदे-ज़वान है।"

नवाब "ताज्जुव!"

गुलखैरू "शेर अफगनके और हमारे वावाके घोडे दोनो एक जंगलमे चरा करते थे। तभीसे उन दोनोंमे खालाज़ाद भाई-जैसा प्यार हो गया था।"

वदहवास "किनमे, घोडोंमे या तुम्हारे वावा और शेर अफगनमें?"

गुलखैरू "मुंशीजी, हो निरे शेखचिल्ली? मैं क्या देखने गया था खुद अन्दाज़ा लगा लो।"

चिरागअली "भाई गुलखैरू! आपके उन वुजुर्गवारआलामें क्या-क्या सिफात थी?"

गुलखैरू "सिफात, लाखो। तीतर लडाना वह जानते थे, कवूतर वह पालते थे, कनकौवे वह उडाते थे, वटेरोंकी पालियाँ वह वदते थे और हाज़िर जवाव ऐसे कि "

सव "भई खूव!"

गुलखैरू "एक वार हमारे वावाजान ससुरालसे दादीको लिये आ रहे थे। रास्तेमें एक रईसज़ादेने छेडनेकी नीयतसे पूछा, "क्यो भई, वह जो तेरे साथ चल रही है, तेरी वहन होती है न!"

"औरतके मुँहपर बहन बनाना, समझ लीजिए हुजूर मर्दके लिए कैसी तौहीन है ? मगर वह चिढे नही, बडे ही भोलेपनसे जवाब दिया, "बन्दा-नवाज़, जिसे आप बहन कहते हैं, वह मेरी बीवी होती है ।" इतना सुनते ही हमारी दादी साहिबा तो खिलखिलाकर हँस पडी, मगर रईसज़ादा बगलें झाँकने लगा ।"

नवाब "भई वाह ! क्या माक़ूल मज़ाक हुआ हैं कि तबीयत बाग-बाग हो गयी । मुशी बदहवासराय साहब, सुना है आपका खानदान भी तो किसी आलीविकारसे ताल्लुक रखता है ।"

बदहवास "जी हाँ, इतना तो नही मगर हाँ, हमारी नानीके पीत-सरेके मौसेरे भाईके सालेके भानजदामाद लालबुझक्कड थे । यही मशहूरो-मारूफ बुज़ुर्ग हमारे खानदानके बडे थे ।"

चिरागअली "आहा, आप उन आला हस्तीसे ताल्लुक रखते है । सुना है वह तो बडे ज़हीन इनसान थे । हाज़िरजवाबीमें सुना है कमाल रखते थे ।"

बदहवास "अरे साहब, कमाल क्या, अपना सानी नही रखते थे । उनका दम गनीमत था । आज तक उस गाँववाले उन्हें याद करके रोते हैं। एक मर्तबा रातको गाँवमें-से हाथी निकल गया । सुबह उठकर लोगोने जो हाथीके पाँवके निशान देखे तो, भौंचक्के हो गये । उन दिनो काहेको किसीने हाथी देखा था, आज-कलकी तरह कुत्ते-बिल्लीके मानिन्द तो हाथी फिरते न थे । लाखोमें किसी एकने देखा होगा । अब सब लोग हैरान कि हे परमात्मा यह क्या बला आसमानसे कूदी ? लेकिन किसीकी समझमे खाक न आया । आखिर हमारे बुज़ुर्गवार साहबके पास लोग गये और मिन्नत-समाजत करके उन्हें निशान दिखाने लाये तो, उन्होने देखते ही फरमाया,

"लाल बुझक्कड जाने और न जाने कोय ।
पग में चक्की बाँध के हिरना कूदा होय ।।"

सब लोग "वाह वा वाह ! क्या हाजिर दिमाग थे ! इसे कहते हैं फिलवदी शाइरी ! क्या नाजुक खयाल है ? हिरनके पाँवमे चक्की बाँधकर हाथीके पाँवसे मुशाहबत देकर क्या बात पैदा की है ? सुब्हान अल्लाह ! सुब्हान अल्लाह !! क्या सूझ थी, क्या दिमाग था, शाइरीमें कितनी फसाहत और बलागत भरी हुई है कि वाह वा, दाद नही दी जा सकती ।"

इमी सिलसिलेमें ही जवाँमर्दोकी डीगें मारी जाने लगी कि यकायक 'हाय मर गयी, बचाना, दौडना' की चीख सुनी, तो भगदड मच गयी । गपोडशंख कूदकर जनानेमें हो लिये, कोई चारपाईके नीचे तो कोई किवाडोकी जोडीके पीछे । गरज जिसे जहाँ मौका मिला घुस गया । अब सब हैरान कि यह हिन्दू-मुस्लिम झगडा कहाँ और कैसे हो गया ? किसकी जान फालतू थी, जो बाहर जाकर पता लगाये । और सच बात तो यह है कि मारे बौखलाहटके यह बात दरयाफ्त करनेकी सूझी ही किस मरदूदको थी ? आखिर जब बूढी मामा रोती हुई और लँगडाती हुई ऊपर आयी, तब पता चला कि जीनेपर केलेके छिलकेपर-से पाँव फिसल गया था, जिससे कि उसके हड्डे-गुड्डे टूट गये थे, उसीने यह शोर मचाया था ।

हकीकत मालूम होते ही सब ही-ही हू-हू करते हुए फिर इकट्ठे हो गये ।

गपोडशख "लोग भी कैसे गावदी हैं, तिलको तेलन और राईका पहाड बना लेते है । मै तो समझा कि डाकू आ गये, दौडकर तलवार लाऊँ कि इतनेमें किस्सा ही बेबाक हो गया । इल्म कसम, दिलके अरमान दिल ही में रह गये, हसरतोका खून हो गया । मुद्दतोंसे तलवार चलानेको बाजू फडक रहे थे, रह-रहकर मन्सूबे बाँध रहा था, यूँ तलवार चलाऊँगा और यूँ बोवी-पाटके दाँवपर या चक्वेडमें बैठकर दे मारूँगा, मगर अफसोस ! वह नादिर मौका ही हाथ न आया ।"

गुलखैरू . "और हुजूर, मेरा हौसला तो देखिए, शोरोगुल सुनते ही किवाड़ोंके पीछे हो रहा कि कब बलवाई आवें और कब सबसे पहले तुला हुआ हाथ जमाऊँ।"

चिरागअली "मेरी न कहना, मैं चारपाईके नीचे बैठा ही इस नीयत-से था कि इधर डाकू आयें और उधर मैं चारपाई उनके ऊपर उलटकर गिरफ़्तार करूँ।"

बदहवासराय "यारो, तुम तो कट मरनेको तैयार हो। तुम्हें कोई रोनेवाला न धोनेवाला, आज मरे कल दूसरा दिन। आगे नाथ न पीछे पगहा, पर यहाँ तो कुनबेदार आदमी ठहरे। बहन हमारे, भाजी हमारे। फिर क्योंकर लड़नेको तैयार हो जाते। चुपके-से सन्दूकचेमें बैठ गये, कि कोई लड़े या मरे, हम तो कुछ न बोलेंगे। हाँ, सन्दूकके सामानके कोई हाथ लगाता, तो हम अलबत्ता जानपर खेल जाते। चमड़ी दे देते, पर दमड़ी न जाने देते। जानसे ज्यादा रुपयेकी कद्र करना हमने तहसीलके खजाची साहबकी अरदलीमें रहकर सीखा।"

गपोड़शख बीच ही में बात काटकर बोले, "अमाँ, यह तो बताओ, झूठको लोग गुनाह क्यों समझते हैं?"

गुलखैरू . "हजरत सच तो यूँ है कि झूठको गुनाह वही लोग समझते हैं, जिनके पास अक्ल कभी झाँकने भी नहीं आती। वरना झूठके बग़ैर दुनियाका काम ही नहीं चल सकता। औरोंकी बात जाने दीजिए, हर एक कौम और हर एक देशके रहबराँ शाइर लोग होते हैं, सब उनके बताये हुए रास्तेपर चलते हैं, वह भी इस झूठसे न बचने पाये।"

बदहवास "यह एक ही दूनकी हाँकी, कि झूठसे न बचने पाये। बन्दे खुदा यह नहीं कहते कि सच उन्होंने जिन्दगी-भर न बोला, ता-उम्र झूठकी ही परस्तिश करते रहे। माशूकके मुँहको चाँद, उसके रुखसारके तिलको आशिककी आहोंसे दुनिया-भरके जले हुए पहाड़ोंका धुआँ बताया।

उसके हँसनेको विजलियां गिराना और रोनेको मेह वरसाना लिखा। उसके अवरू (भवें) और नौके-मिजगाँ (पलकोकी वालोकी नोक) को छुरी, तीर, तलवार, दश्ना और खंजरसे भी ज्यादा खतरनाक समझा। उसकी कमर दूरवीनमे भी देखनेमे न आ सके, इतनी पतली और आंखे काजलका भार भी न उठा सकें, इतनी नाज़ुक और उसकी जुल्फेंदुताँको साँपोका जोडा तसलीम किया। गरज गवेके सिरपर सींग, आसमानमें फूल और इनसानके दुम तक लगानेमे वे लोग न चूके।"

गुलखैरू "उफ! उफ!! उफ!!! कैसा मूज़ी दर्द है कि किसी तरह चैन नही मिल रहा है।"

नवाव "मियाँ गुलखैरू, यह अचानक दर्द कैसा? कहाँ हो गया भाई। अभी तो खासे अच्छे-विच्छे वातें कर रहे थे।"

गुलखैरू "अजी हुज़ूर क्या वताऊँ? आपके गुलामने कोठीके आँगन-मे एक चमेलीका पेड लगा दिया है। मौकेकी वात, पेडसे फूल टूटकर मेरी पीठपर कुछ इस ढगसे गिरा कि मैं हाय करके रह गया। तौवा है, तभीसे चैन नही लेने देता! कुछ देर वातोमें खामोश रहा कि नामुराद फिर उठ खडा हुआ। उई लेना वचाना हाय "

चिराग. "यह दर्द कमवख्त होता ही ऐसा नामुराद है कि तौवा, तौवा। दो रोज हुए पडोसमे एक फूहड धान कूट रही थी। उसकी धमक-से कानोमें ऐसी टीस हो गयी है कि किसी पहलू चैन नही पडता! उफ ।"

वदहवास "हुज़ूर, अव तो सवको इजाजत दीजिए। मुशाअरेका रग फिर कभी जमेगा। मेरा भी वुरा हाल है। एक हफ्ता हुआ जव एक पोस्तेके दानेको नौ दफे पीसा ग्यारह दफे छाना। चौथाई लुगदी पी, वाकी उठाकर रख दी। मगर कब्ज़के मारे तभीसे वुरा हाल है।"

नवाव. भई, हमारा खुद वुरा हाल है। कल खिचडी खाते हुए

पोहचा उतर गया था। अच्छा भाई जाओ आराम करो वक्त भी दससे ऊँचा हो गया है।"

एक दिन वेगम किसी रिश्तेदारीमें गयी, तो उसे देखते ही औरतोंने चुपकेसे कहा, "वहिनो, खामोश रहो, गपोडशखकी घरवाली आ रही है, ऐसा न हो कि कोई वात हमारी यह सुन जाये और फिर जाकर अपने मर्दसे कह दे। कही ऐसा हो गया, तो सारे शहरमें वातका वतगड फैल जायेगा।" यह वात वेगमके कानोमें भी पड गयी। वह मारे गैरतके उलटे पांव अपने घर लौट आयी और आसन-पाटी लेकर पड रही। गपोडशंख हैरान थे कि यह यकायक आनन्दकाण्डमे कोपकाण्ड कैसे प्रारम्भ हो गया। अव उन्हें डर लगने लगा कि कही किचकन्धा-काण्ड शुरू होकर लकाकाण्ड तक नौवत न पहुँचे। अनेक मिन्नतें और खुशामदोके वाद वेगम बोली, "आखिर तुम मुझे यूँ कवतक जलाओगे? सारे शहरमे वदनामी हो रही है, पर तुम्हारे कानपर जूँ तक नही रेंगती। मैं पूछती हूँ, तुम्हे इस झूठ वोलनेमें क्या मजा आता है? कभी छठे-चौमासे, होली-दीवाली सच भी वोल लिया करो। वूढे होनेको आये, पर आदमी न वने। यह वाल क्या धूपमें सुखाकर ही सुफेद करोगे?"

गपोडशख सहमकर वोले, "मै तो खुद ही इस झूठकी बीमारीसे परेशान हूँ। पर क्या करूँ, यार लोग पीछा छोडे तव न। उनकी शक्ल देखते ही झूठकी वहशत सवार हो जाती है। अच्छा लो। हम परदेश जाते है। न वहाँ ये लोग होगे और न हम झूठ वोलेंगे। वस झूठकी आदत छोडकर ही हम तुम्हें अव अपनी शक्ल दिखलायेंगे।"

वेगमने खुशी-खुशी सफरकी तैयारी कर दी। यारोंसे विदा होकर गपोडशख शामके वक़्त देशाटनको निकल पडे। वेगम खुश थी कि अव पतिदेव सत्यवादी हरिश्चन्द्र ही वनकर आयेंगे। यह सारी बदनामी भलाई-

में तब्दील हो जायेगी, लोग मुझे भी इज़्ज़तकी नजरसे देखेंगे। उनके आनेपर कुत्तोंको दूध और भूखोंको भरपेट खाना खिलाऊँगी। इसी उधेड़-बुनमें रात निकल गयी, खुशीके मारे उसे नींद न आयी। सुबह उठकर उसने देखा, तो गपोड़शंख दालानमें पाँव फैलाये हुए दोनों कूल्होंपर हाथ रखे हुए हाँप रहे हैं! उनको देखते ही बेगमका माथा ठनका। अन्यमनस्क भावसे पूछा, "क्यों, क्या सत्यवादी बन आये?"

गपोड़शंख रुँधे हुए स्वरसे बोले, "तुम्हें सत्यवादी बनानेकी पड़ी है, यहाँ जानकी नौबत आ पहुँची।"

बेगम घबराकर बोली, "क्यों, क्या हुआ?"

गपोड़शंख थूकको सटकते हुए बोले, "यह न पूछो, याद आते ही बदनके रोंगटे खड़े हुए जाते हैं।"

बेगम उत्सुकतासे बोली, "आखिर क्या बात हुई?"

गपोड़शंखने अपनी दास्तान इस प्रकार शुरू की,

"यहाँसे चलकर मैं दो घण्टेमें ही कदलीवनमें पहुँच गया। वहाँ एक साफ-सुथरी चट्टानपर बैठकर खाना खानेकी तैयारीमें था कि इतनेमें पूरे बाईस हाथ लम्बा, न जौ-भर छोटा न तिल-भर बड़ा, शेर आ पहुँचा। यूँ शेरके शिकार सैकड़ों ही किये, पर न मालूम उस वक्त क्या हुआ, उसे देखते ही मुझे पसीना आ गया। शायद पसीना आनेकी वजह मेरी गरम-मिज़ाजी हो। खैर, मैंने उसे निशाना बनानेके लिए जो बन्दूक सँभालनी चाही, तो खयाल आया कि इस निहत्थेसे तो खाली हाथ ही लड़ना चाहिए। यह सोचते ही मैं चाहता था कि धोबीपाटका हाथ दिखाकर इसे ज़मीन सुँघा दूँ कि रहम आ गया और सोचा, क्यों नाहक इसकी जान लूँ! यह तो जानवर है, इसका क्या बिगड़ेगा, मुफ्तमें इस जूनसे छूट जायेगा, मगर पाप नाहक़ मुझे लगेगा। यह खयाल आते ही मैं तो जूतियाँ छोड़कर भाग निकला। मुझे भागता देखकर शेर भी शेर हो गया। अजी, वह तो आखिर शेर था। भागते हुएको देखकर तो कुत्ता भी शेर हो जाता है। अब कहीं

छिपनेकी जगह नही। क्या करूँ, कुछ सूझ ही न पडता था। शुक्र समझिए कि मै बचपनसे ही ज़हीन हूँ। दिमागपर ज़रा ज़ोर दिया, तो चट औसान सूझ आया। चनेका पेड खडा हुआ था। बस, दो छलागमें पेडकी फुनगीपर जा बैठा। अब शेर बडे चक्करमे, खिसियानी बिल्ली खम्भा नोचे—इस कहावतके मुताबिक झेंप उतारनेकी गरज़से लगा पेडके चारो तरफ घूमने। कुछ देर तक तो मै भी भूख और प्यासको रोके सब्र किये बैठा रहा, पर पेशावकी हाजतने जोर पकडा तो परेशान हो गया। आखिर सोचते-सोचते ख़याल आया कि क्यो न दरख़्तपर-से बैठे-बैठे ही पेशाब कर दूँ। मेरा दरख़्तपर-से पेशाब करना था कि वह जालिम पेशावकी धारको पकडकर ऊपर चढने लगा। अब तो मैं भी चौकडी भूल गया। घबराकर पेशाव रोक लिया। पेशावका रोकना था कि वह धडामसे औंधे मुँह ज़मीनपर गिरकर ठण्डा हो गया। एक मुसीवतसे निजात पायी, तो दूसरीको दावत दी। पेशावकी धारके ज़ोरसे पेडकी जडें हिल गयी और पेड मुझे लिये पानीके अन्दर चला गया। खैरियत हुई, जो हम तैरना जानते थे, वरना उसी खेतमे कब्र बनी होती।"

बेगम आँखें नचाती हुई बोली, "जब पानीमें भीगकर आये हो तो बदनके कपडे कैसे सूखे रह गये ?"

गपोडशंख "आखिर इतनी देर धूपमें चलकर आया हूँ। कपडोके सूखनेमें कुछ देर लगती है ?"

बेगम माथेपर हाथ मारकर बोली, "बस, माफ करो। मैं बाज़ आयी आपके सत्यवादी बननेसे। जितने पहले थे उतने ही बने रहो—आगे न बढो, यही ग़नीमत है। अल्लाह वास्ता न डाले ऐसे गपोडशखो और झूठोंके बादशाहोंसे।"

वीर, दिल्ली; ३ फ़रवरी १९४० ई०

■

दुर्बलताका अभिशाप

भेडिया नदीके किनारे पानी पी रहा था कि उसने देखा—नीचेकी तरफ, बहावकी ओर एक भेडका बच्चा भी पानी पी रहा है। उसे देखते ही भेडियेके मुँहमें पानी भर आया। बोला,

"क्यो बे! पानीको जूठा क्यो कर रहा है? देखता नही हम पानी पी रहे है?"

भेडका बच्चा बोला, "चचा, आप ऊपरकी तरफ पानी पी रहे है, आपका जो जूठा पानी बहकर आ रहा है, मैं तो उसे पी रहा हूँ।"

भेडिया लडनेका कोई बहाना न पाकर बोला, "अच्छा, तू यह तो बता कि तैने एक साल हुए हमें गाली क्यो दी थी?"

भेड-बालक सकपकाकर बोला, "चचा, मेरी तो उम्र ही ब-मुश्किल छह महीनेकी है, भला एक साल पहले मै आपको गाली कैसे दे सकता था?"

भेडिया खीझकर बोला, "अच्छा, तेरी माँ मुझे कल कोस क्यो रही थी?"

भेडका बच्चा बोला, "चचा, उसे तो मरे हुए भी एक माह हो गया, वह आपको कल कहाँसे कोसने आती?"

भेडियेने देखा कि भेडका बच्चा बडा चालाक है, किसी बातपर जमने नहीं देता। अत झुँझलाकर, "क्यो बे छोकरे, तू इतनी देरसे हमारा सामना क्यो कर रहा है?" कहा और उसे मार डाला।

तब पेडपर बैठी हुई मैनाने तोतासे कहा, "देखा, निर्बल सबलके साथ कितना ही सभ्यतापूर्ण और सचाईका व्यवहार करे, वह सुरक्षित रह नही सकता। भेड जबतक भेड बनी रहेगी, उसे खानेको भेडिये पैदा होते ही रहेंगे।"

वीर, दिल्ली, २७ जनवरी १९५० ई०

■

जाति-द्रोह

बारह वर्षके बालक शेरसिंहने अपने कुत्तेको पुचकारते हुए अपनी माँसे कहा, "माँ, लोग अपने लडकोंके—तोताराम, वृषभचरन, हंसराज, मयूरध्वज, अश्वसेन, भालूमल, केहरिचन्द, कपिध्वज, हाथीसिंह, नीलकण्ठ और लडकियोंके—मैना, कट्टो, कोकिला, मृणालिनी, हंसा, नागकुमारी, गोमती वगैरह, अन्य पशु-पक्षियोंके नाम तो रखते है, लेकिन कुत्तेके पर्याय-वाची—श्वानसेन, कूकरनाथ, रात्रिजागरमल, वगैरह—नाम नही रखते। उलटा किसीको कुत्ता महाशय कह दो तो बुरा मान जाता है और लडने-मरनेको तैयार हो जाता है। माँ, मेरा नाम शेरसिंहकी बजाय श्वानसेन रख दो, मुझे यह नाम जितना प्रिय है उतना ही अपने वर्त्तमान 'शेरसिंह' नामसे नफरत है। कल सरकसमे देखा शेर तो माँस खाता है, उसके शरीरमें से महादुर्गन्ध आती है, बडा ही क्रोधी और हिंसक पशु है।"

माँ बालककी सरलतापर मुसकरायी, फिर प्यारसे बोली, "बेटा, कुत्ता स्वामिभक्त और वफादार तो है लेकिन वह अपनी जातिसे द्रोह रखता है। अपनोंको देखते ही काटनेको दौडता है। जो जाति औरोंसे प्रेम और अपनोंसे बैर रखती है, उस जातिको सब नफरतकी नजरसे देखते है। इसलिए कुत्ता शब्द इतना घृणित, अपमानजनक बन गया है कि कोई भी इसे अपने लिए नही सुनना चाहता।"

शेरसिंहने माँकी बात सुनी तो उसने अपना पालतू कुत्ता दूर भगा दिया।

वीर, दिल्ली; फरवरी १९४० ई०

■

भाइयोंकी बदौलत

देहलीकी तारीफ सुनकर मथुराका एक कुत्ता सैर करनेके लिए आया तो देहलीके कुत्तोंने उसका निवास-स्थान पूछा। स्थान बतानेपर पूछा, "मथुरासे कितने महीनोंमें आ पाये हो?"

उत्तर मिला, "सात रोज़में।"

देहलीके कुत्तोंने हैरानीसे कहा, "है! हम तो सुना करते थे कि मथुराका रास्ता महीनोंका है। तुम सात रोज़मे कैसे आ गये?"

मथुरावाले कुत्तेने निहायत आज़िज़ीसे जवाब दिया, "बेशक रास्ता तो महीनोंका ही है, मगर अपने भाइयोंकी बदौलत यह रास्ता एक हफ्तेमें ही तय कर सका हूँ।"

"वह कैसे?"

"वह ऐसे कि मथुरासे चला तो चौमाके अपने कुत्ते भाइयोंने मेरी टाँग पकडकर आव-भगत की, उनसे जान छुडाकर भागा तो छटीकरा-वालोंने आडे हाथ लिया, उनसे बचकर भागा तो आगे छातई, फिर कोसी-के भाइयोंने गला दबोचा। वहाँसे निकलकर भागा तो—होडल, पलवल, वल्लभगढ, फरीदाबाद, निज़ामुद्दीन, ओखला वग़ैरहके कुत्ते भाइयोंने अपनी औक़ातके अनुसार खातिर तवाजा की। कहीं भी आरामसे साँस न लेने दिया। सारे रास्ते भागा हुआ आ रहा हूँ।"

देहलीके कुत्तोंने मारे शर्मके गरदन नीची कर ली और मनमे सोचने लगे, "हाँ! हमारी भी कैसी पतित कौम है जो अपनोंसे वैर रखती है और दूसरोंके तलुवे चाटती है।"

२ फ़रवरी १९४० ई०

■

ईर्ष्याका परिणाम

दो पण्डित दक्षिणा प्राप्त करनेकी नीयतसे एक सेठके यहाँ पहुँचे। विद्वान् समझकर सेठ साहवने उनकी काफी आवभगत की। उनमें-से एक पण्डित जव स्नान वगैरहके लिए गये तो सेठजी दूसरे पण्डितसे वोले,

"महाराज, ये आपके साथी तो महान् विद्वान् मालूम होते है।"

पण्डितजीमें इतनी उदारता कहाँ जो दूसरेकी प्रशसा सुन लें। मुँह विगाडकर वोले, "विद्वान् तो इसके पडोसमें भी नही रहते। यह तो निरा वैल है।"

सेठजी चुप हो गये। जव उक्त पण्डित सन्ध्या वगैरहमें वैठे तो पहले पण्डितजीसे वोले, "महाराज, आपके साथी तो प्रकाण्ड विद्वान् नजर आये।"

ईर्ष्यालु पण्डित अपने हृदयकी गन्दगीको वखेरते हुए वोला, "अजी, विद्वान्-उद्वान् कुछ नहीं, कोरा गधा है।"

भोजनके समय एकके आगे घास और दूसरेके सामने भुस रखवा दिया गया। पण्डितोने देखा तो आगवबूला हो गये। वोले, "सेठजी, हमारा यह अपमान, इतनी वडी धृष्टता!"

सेठजी हाथ जोडकर वोले, "महाराज, आप ही लोगोने एक दूसरेको गधा और वैल वतलाया है। अत गधे और वैलके योग्य खुराक मैंने सामने रख दो। आप ही वतलाइए, इसमें मेरा क्या कुसूर है? मैं तो आप दोनोको ही विद्वान् समझता था, पर वास्तविक बात तो आपने स्वय ही वतला दी।"

सेठजीकी वातसे पण्डित वडे लज्जित हुए और पछताते हुए मनमे कहने लगे, 'वास्तवमे जो अपने साथीको वढा हुआ नही देख सकता, वह स्वय भी नही वढ सकता। स्वय प्रतिष्ठा प्राप्त करनेके लिए अपने साथियोका आदर करना, उन्हें वढाना अत्यावश्यक है। ईर्ष्यालु मनुष्योकी हमारी-जैसी ही गति होती है।"

अनेकान्त, दिल्ली, अगस्त १९३९ ई०

■

मूर्ख ईर्ष्यालु

एक मनुष्यकी पूजा-उपासनासे प्रसन्न होकर देवीने प्रकट होकर उसे एक शंख दिया और कहा, "जो तू चाहेगा वही शखके वजानेपर मिलेगा और पडोसियोको तुझसे दूना मिलेगा।" भक्त प्रसन्न होकर चला गया। उसने शख वजाया और कहा कि मेरा एक आलीशान मकान वन जाये। शख वजाते ही मकान तुरन्त वन गया और पडोसियोके वैसे ही दो-दो महल वन गये। भक्तको यह वहुत वुरा लगा। भला ईर्ष्यालु मनुष्य दूसरोको कव फूलते देख सकता है ? उसने क्रुद्ध होकर शखको एक कोनेमें डाल दिया। मगर कुछ अरसे वाद उसे रुपयोकी सख्त जरूरत हुई। लाचार होकर शख वजाया। शख वजते ही उससे दूने रुपये पडोसियोके घरोमें आन पडे। यह उससे वरदाश्त न हुआ और उसने फिर क्रुद्ध होकर कहा कि, "मेरे घरके आगे चार-चार कुएँ खुद जायें।" शख वजा और चार कुएँ उसके यहाँ और आठ-आठ पडोसियोके घरके आगे खुद गये। फिर कहा, "मेरी एक आँख फूट जाये।" शख वजते ही उसकी एक और पडोसियोकी दोनो आँखें फूट गयी। और अन्धे होनेके कारण पडोसी वेचारे कुओंमें गिर पडे। उन्हें कुओंमें गिरते देख ईर्ष्यालु मनुष्यको वहुत प्रसन्नता हुई, हालाँ कि एक आँख उसकी भी फूट गयी थी।

अप्रैल १९३९ ई०

■

नीम हकीम

एक हकीम किसी सरायमें ठहरे हुए थे। वहाँ एक ऊँट भी बँधा हुआ था। ऊँटने पास ही पडे हुए तरबूजको खाना चाहा तो वह उसके गलेमें अटक गया। हालत यह हुई कि न वह निगल ही सकता था न उगल ही सकता था। बेचैनीके मारे वह ज़मीनमें लोट-पोट होने लगा। ऊँटवाला ऊँटकी इस हालते-ज़ारको देखकर बहुत घबराने लगा। हकीमजीने ऊँटको तरबूज़ खाते देख लिया था। अत उन्होंने पन्द्रह रु० ऊँटवालेसे लेकर ऊँटकी गरदन-के नीचे एक पत्थर रखकर और एक ऊपरसे मारकर तरबूजको तोड दिया और ऊँट राजी-खुशी बलबल करता हुआ खडा हो गया। हकीमजीके नौकर-ने देखा तो उसके मुँहमें भी पानी भर आया। उसने पन्द्रह रु० मासिकपर नौकर रहनेके बजाय मिनिटोमें पन्द्रह रु० कमा लेना बुद्धिमत्ता समझकर नौकरी छोड दी। और एक शहरमें 'गलेके फोडोके विशेषज्ञ' का साइन-बोड लगाकर जम गया। सयोगकी बात, शहरके रईसकी पत्नी गलेके फोडेमे मरणासन्न थी। योग्य डॉक्टर इलाज कर रहे थे कि किसीने इनकी भी सूचना दी तो बुलाये जानेपर पाँच मिनिटमें शर्तिया आराम कर देनेकी बात कही। मरता क्या न करता, लोगोने विश्वास कर लिया। हकीम-जीने पन्द्रह रु० लेकर वही करतब दिखाया जो वे सरायमें देख चुके थे। ऊँट तो बच गया था, परन्तु सेठानीने आँखें फेर दी। लोगोने पूछा कि, "मूर्ख, तूने यह क्या किया ?" तो नीम हकीम सहज स्वभावसे बोले, "बडे हकीमजीने तो ऊँट इसी प्रकार अच्छा किया था।"

जनवरी १९५० ई०

■

बदपरहेज़

एक सेठको खाँसी थी। खाँसीमें दही अत्यन्त नुकसानदेह है, परन्तु सेठजी दही खानेसे बाज़ नही आते थे। उन्हें दहीका ऐसा चसका लगा हुआ था कि समझानेपर भी नही मानते थे। रोग बढता ही जा रहा था। नित नये वैद्य-हकीम आते, परन्तु सेठजीकी बदपरहेज़ीसे घबराकर भाग खडे होते। एक अन्य वैद्यजीने सेठजीकी यह कैफियत सुनी तो उन्होने सेठजीको नीरोग कर देनेका विश्वास दिलाया, परन्तु शर्त यह रखी कि जबतक इलाज चलेगा दही अवश्य खाना पडेगा। सेठजीको और क्या चाहिए? मनके अनुसार वैद्य पाकर बडे प्रसन्न रहने लगे और खूब इनाम आदि देने लगे। वैद्यजी भी अवसरकी खोजमें रहने लगे और ऐसी दवा देते रहे जिससे रोग अधिक न बढने पाये, क्योंकि दही खानेके कारण रोग घटनेका तो कोई उपाय ही न था। एक रोज़ सेठजी मुसकराकर बोले, "देखो यह भी तो वैद्य है जो दही खाना लाज़िमी बताते हैं। इनके इलाजसे रोग घटा नही तो बढा भी नही। पुराना रोग जब ठहर गया है तो एक दिन नष्ट भी हो ही जायेगा।"

वैद्यजी बात बनती देखकर बोले, "सेठजी, खाँसीमे दही खानेसे तीन लाभ हैं। घरमे चोरी नही होती, कुत्ता कभी नही काटता और बुढापा कभी नही आता!"

सेठजीने कारण बतानेकी उत्सुकता प्रकट की तो बोले, "रात-भर खाँसते रहनेसे घरमें चोर नही घुसते। निर्बलताके कारण लाठी रखनी पडती है, अत. कुत्ते पास नही फटक सकते और जवानीमें ही मर जानेसे बुढापा नही आ सकता।"

सेठजीकी नानी मरे जो फिर कभी दही खाया हो।

फ़रवरी १९५० ई०

■

अफीमचीकी होशियारी

देहातके एक अफीमची दिल्ली सैर करने आये और लक्ष्मीनारायणकी धर्मशालामें ठहर गये। रातको खुश्कीने ज़ोर किया तो धर्मशालाके बाहर-वाले हलवाईसे आठ आनेकी रबडी मलाई खायी। अफीमचीने रुपया दिया तो हलवाईके पास रेज़गारी नहीं थी। लाचार बाकी अठन्नी अगले रोज़ ले जाना तय हुआ। अफीमचीने होशियारी यह की कि दुकानकी ठीक-ठीक पहचान कर ली ताकि दूसरे रोज़ पहचाननेमें भूल न हो। अगले रोज अफीमची एक मुसलमान दरजीसे जाकर बोला,

"लाला, कल रातके आठ आने वापस दिलाइए।"

"कैसे आठ आने ?"

"कल रातको एक रुपया देकर आठ आनेकी रबडी ली थी। उस वक्त रेजगारी न होनेसे आपने आज ले जानेको कहा था। क्या रातकी अठन्नी इतनी जल्दी भूल गये ?"

दरजी झल्लाकर बोला, "अमाँ, अन्धे हो, यह दरजीकी दुकान है या हलवाईकी ?"

"क्या खूब ? अठन्नीके लिए पेशा बदला-सो-बदला, मजहब भी बदल बैठे। भई, यह शहरवाले भी कैसे चालाक होते हैं।"

लोगोंने झगडेका सबब पूछा तो अफीमची निहायत सजीदगीसे बोला,

"अरे साहब, मैं क्या दीवाना हूँ जो परदेशमें नाहक झगडा मोल लूँगा ? रातको यह साँड जिस दुकानके आगे बैठा था, वहीसे मैंने रबडी ली थी, देख लो गरीब अभीतक वही बैठा हुआ है।"

फ़रवरी १९५७ ई०

मौलवीकी दाढ़ी

मौलवी लतीफ़को बीमारीकी वजहसे जब लम्बी छुट्टी लेकर घर जाना पड़ा तो अपनी एवज़ीमें एक नये मुल्लाको छोड़ गये। ताकि वापसीपर गाँवकी मस्जिदका अधिकार बरकरार बना रहे। मगर नये मुल्ला एक ही काइयाँ थे। अपनी मीठी ज़बानसे लोगोंपर ऐसी मोहिनी डाली कि हरदिलअज़ीज़ बन गये। मौलवी लतीफ़ ड्यूटीपर वापस आये तो उन्होंने गाँवका नक्शा ही बदला हुआ पाया। गाँववाले उनकी खैरो-आफ़ियत पूछनेके बजाय उनसे आँख चुराने लगे।

मौलवी लतीफ़ भी पुराने घाघ थे। मौक़ामहल देखकर वे भी नये मुल्लाकी तारीफोंके पुल बाँधने लगे। जुम्मेकी नमाज़को गाँवके सब मुसलमान नमाज़ पढ़ने आये तो उनके सामने नये मुल्लाको मुख़ातिब करते हुए बोले,

"मौलाना, मैं तो आपको वली समझता हूँ। गाँव-गाँवमें आपकी करामातोंकी धूम मची हुई है। जिसे भी आपने अपनी दाढ़ीका एक बाल दे दिया, निहाल हो गया। कंगाल, मालामाल हो गये। बेऔलादोंकी गोदें भर गयीं। नाबीने आँखवाले हो गये। बूढ़ोंको जवानी मिल गयी। रोगी नीरोग हो गये। [illegible] वास्ते मुझे भी एक बाल अता फरमाइए ताकि बतौर तबर्रुक अपनी जानसे भी ज्यादा अज़ीज़ रख सकूँ और मनकी मुरादें पूरी कर सकूँ।"

मुल्लाजीने तारीफ़ सुनी तो बाँछें खिल गयीं। आव देखा न ताव, झट एक बाल नोचकर मौलवी लतीफ़को मरहम्मत फरमा दिया। एक बालका देना था कि गाँववाले भी इसरार करने लगे। मुल्लाजीको [illegible] [illegible] देर भर [illegible] एकबारगी टूट पड़े, और इस नेमतसे यहाँ कोई महरूम न रह जाये, इसी आपा-धापीमें मुल्लाजीकी दाढ़ी ठूँठ हो गयी।

दूसरे दिन मुल्लाजी बोरिया-बधना बाँधकर गाँवसे खिसक गये और [illegible] [illegible] [illegible] नहीं आये।

फरवरी १९५० ई०

■

मुशाअ़रेमें परिहास

शिमलेमे एक आलीशान मुशाअरा हो रहा था। पजावके प्रीमियर सर सिकन्दर हयातखाँ मुशाअरेके मभापति थे ? खिलाफत आन्दोलनके मशहूर नेता मुहम्मदअली मर चुके थे और उनके छोटे भाई शौकत अली उस मुशाअरेमें मौजूद थे। जब आपके गजल पढनेका नम्बर आया तो गजल पढनेसे पूर्व आपने श्रोताओंसे कहा, "हज़रत, मेरे वालिद मुहतरिम भी शाइर थे और 'गौहर' तखल्लुस फरमाते थे। मेरे बडे भाई मुहम्मदअली भी शाइर थे और 'जौहर' तखल्लुस रखते थे और मैं भी शाइरी करता हूँ। और.. . "

बीचमें ही एक श्रोता बोला, 'शौहर'। गौहर, जौहरकी तुकमें शौहर-का मज़ाहिया तखल्लुस ईजाद करनेपर जनतामे हँसीके फव्वारे छूट पडे। खुद मौलाना भी इस फब्तीसे काफी देर तक हँसते रहे और फब्ती कसने-वालेकी काफ़ी तारीफ करते रहे।

शौकतअली अपने भाईके मरनेके बाद बुढापेमें एक अमरीकन लेडीसे शादी करके ताज़े-ताज़े शौहर बने थे। जौहर, जौहरके तुकके साथ शौहरमें यह व्यग्य भी निहित था।

फ़रवरी १९५० ई०

■

वहमकी दवा

सुनते है कि वहमकी दवा लुकमान हकीमके पास भी नही थी। वहमका रोग असाध्य है। जिसे यह रोग हुआ, उसे फिर कोई इस रोगसे मुक्त नही कर सकता, परन्तु यह वात सोलह आने सही नही, वहमकी भी दवा है। एक अफीमची सेठके वहमको दूर करके एक नौकरने किस तरह विश्वास प्राप्त किया, नीचेके उदाहरणसे मालूम किया जा सकता है।

एक अफीमची सेठको वहमके रोगने वुरी तरह घेर लिया था। उनको अपनी पत्नी और सन्तानपर भी विश्वास नही था। नित नयी व्यवस्था वनाते थे, नौकर वदलते थे, परन्तु सन्तोष न होता था। हर कामके लिए जुदे-जुदे कर्मचारी नियुक्त थे, फिर भी सभी कार्य वेढंगे चलते थे।

अफीमची सेठको सवसे वडी शिकायत यह थी कि रातको जव वे पीनकमे होते थे, तव मलाईदार दूध उन्हें न पिलाकर लोग स्वयं पी जाते थे। आखिर तंग आकर सिर्फ इस कार्यके लिए ही उन्होने एक नौकर रखा। आदेश दिया गया कि रोजाना रातको चार पैसेका दूध मलाईदार सेठजीको पिला दिया करे। दूध उन दिनो तीन आने सेर मिलता था। अत नौकर एक पैसा अपनी गाँठमें रखकर तीन पैसेका दूध पिलाने लगा। दूसरा नौकर रखा तो वह दो पैसेका दूध पिलाता और एक-एक पैसा दोनो नये-पुराने नौकर वाँट लेते। तीसरा नौकर रखा तो वह तीन पैसे परस्पर वाँटकर एक पैसेका ही दूध पिलाता। लाचार होकर चौथा नौकर रखा गया तो तीनो नौकर हैरान कि तीन पैसे तो यह हमको दे देगा और एक पैसा स्वय भी रखना चाहेगा, फिर यह दूध कैसे पिलायेगा? चौथा नौकर पूरा चंट था। इस कानाफूसीकी भनक उसके कानमे गयी तो वोला, "मुझे क्या अपने-जैसा वुद्धू समझते हो? देखते जाओ मालिकको किस प्रकार प्रसन्न करके अपनी नौकरी स्थायी वनाता हूँ।"

रातको ये हज़रत हलवाईकी दुकानसे खाँसीकी दवा खानेके बहाने तनिक-सी मलाई माँग लाये और पीनकमें ऊँघते हुए सेठजीकी मूँछोपर लगा दी। प्रात सेठजी उठे और ओठोपर जो जीभ लगी तो मलाईका स्वाद पाकर बाग-बाग हो गये। बोले, "बडे भाग्यसे यह ईमानदार नौकर मिला है। देखो तो सही, दूध कैसा मलाईदार पिलाया कि मलाई अभीतक मूँछोपर लगी हुई है।"

मई १९५० ई०

■

हुनरकी कमी

एक गाँवमे एक बुड्ढा रगरेज़ रहता था। उसे काला, पीला, हरा और लाल ये चार ही रग रँगने आते थे। गाँवकी बहू-बेटियाँ कभी धानी, प्याज़ी, किसमिसी, सुर्मई, ऊदी, मोरकण्ठी वगैरह रँगनेको ज़िद करती, तो बुड्ढा कहता, "मेरी बेटीके गोरे बदनपर खिलेंगे तो काले, पीले, हरे और लाल रग ही। बाकी यूँ कहो जौन-सा रग रँग दूँगा।" बहू-बेटियाँ नित नये रगकी फरमाइश करती, मगर रँगकर आते वही रग जो बुड्ढा रँगना जानता था।

वीर, दिल्ली, १२ जनवरी १९४० ई०

■

ज़रूरतके मुताबिक़ ईमान

एक मुसलमान दरज़ीने रोग-शय्यापर पड़े हुए स्वप्न देखा कि वह सचमुच मर गया है और कब्रमे दफना दिया गया है। क़ब्रमें हरी, पीली, लाल, नीली, रंग-बिरंगकी हज़ारों किस्मकी उसे झण्डियाँ टँगी हुई दिखाई दीं। पासमें खड़े हुए फरिश्तेसे दरयाफ्त करनेपर मालूम हुआ कि दरज़ीके पेशेको करते हुए जिन-जिस रंगका कपड़ा चुराया था, उसकी ये गवाहियाँ देंगी, ताकि अल्लाहमियाँ उन्हें देखकर गुनाहोंकी जाँच करके सज़ा दे सकें। दरज़ीने सजाकी बात सुनकर घबराहटमें ज्यों ही 'या अल्लाह तौबा' कहा कि उसका स्वप्न भंग हो गया। धीरे-धीरे अच्छा होनेपर जब वह दुकान-पर आया तो शागिर्दोंको हुक्म दिया कि, "मैं अगर किसी कपड़ेमें-से कुछ बचाना चाहूँ तो तुम लोग 'उस्तादजी, झण्डी' कह दिया करो।" चुनांचे जब कभी उस्तादजीकी नीयत बद होती, हुक्मके मुताबिक़ शागिर्द लोग 'उस्तादजी, झण्डी' कह देते और उस्तादजीकी बेईमान रूह सजाके खौफसे काँप जाती। एक बार किसी जजकी अचकनका बहुत ही बढ़िया कपड़ा आया। देखते ही उस्तादजीके मुँहमें पानी भर आया। एक वास्कटके पेश निकालनेको ज्यों ही कैंची चलायी कि हस्बमामूल शागिर्दोंने 'उस्ताद-जी, झण्डी' की आवाज फेंकी। शागिर्दोंकी इस रोज़ानाकी नसीहतसे उकताकर उस्तादजी बोले, "अबे बेवकूफो, इस रंगका कपड़ा वहाँ नहीं था" और वास्कटके पेश निकाल लिये।

वीर, दिल्ली, १३ जनवरी १९५० ई०

■

व्यर्थकी रार

दो ग्रामीण मित्र थे। एक रोज एकने कहा, "हम तो अबकी बार ईख बोयेंगे।"

दूसरा बोला, "ईख तू बोना, हम तो भैंस लायेंगे।"

पहला बोला, भैंस तो तू बेशक ले आना, मगर बाँधकर रखना, ऐसा न हो कि मेरी ईख चर जाये।"

दूसरा तमककर बोला, "भाई जानवर है, आदमी तो है नही, जो कहा मान जाये, उसके मनमें आयेगी तो ईख खायेगी ही।"

यह सुना तो पहला झल्लाकर बोला, "तो बस अब तू भैंस ला चुका।"

दूसरेने भी मुँह मटकाकर उत्तर दिया, "तो बस तू भी ईख बो चुका।"

पहलेने चट उँगलीसे ज़मीनपर लकीरें काढ दी और बोला, "ले, मै तो ईख बो चुका, अब तू अपनी भैंस छोड।"

दूसरेने वहीसे एक ककरी ले उन लकीरोमें डाल दी और कहा, "ले, मैं तो अपनी भैंस छोड चुका, कर ले क्या करता है।"

दोनो एक-दूसरेपर टूट पडे और ख़ूनम-ख़ून हो गये।

जून १९४० ई०

■

लक्ष्मीकी उपासना

एक सेठ साहब गद्दीपर बैठे हुए पानकी पीक बार-बार सोनेके उगालदानमें थूक रहे थे। एक लक्ष्मी-उपासक भी वहाँ बैठा हुआ था। जब सेठजीका बार-बार थूकना उससे सहन न हुआ तो उगालदानको लात मारकर बोला, "सुसरी, यहाँ तो थुकवानेमें भी नहीं शर्माती और मैं जनम-भर पूजा करते-करते थक गया तब भी न आयी।"

सेठ साहबने यह हरकत देखी तो हँसकर बोले, "भोले भाई, लक्ष्मीकी उपासना करनेसे लक्ष्मी नहीं आती, लक्ष्मीको ठुकरा देनेवाले वीतराग प्रभुकी उपासनासे लक्ष्मी तो क्या तीन लोकका राज्य पाँव चूमनेसे नहीं शर्माता। लक्ष्मीको जितना पूजो उतना ही दूर भागती है और जितना ही ठुकराओ (दान करो) उतना ही चिमटती है। क्या स्वामी रामतीर्थका यह शेर नहीं सुना,

भागती फिरती थी लक्ष्मी, जब तलब रखते थे हम।
अब हमें नफ़रत हुई, वह बेक़रार आनेको है॥

मई १९५० ई०

■

कठोर मालिक

एक जमींदार हिसाब-किताबके बड़े सख़्त थे। नौकरोंसे जरा भी नुक़सान होता तो उसका मुआवज़ा वसूल कर लेते। एक दिनकी भी ग़ैर-हाज़िरी होती तो नागा काट लेते। एक रोज़ बैलगाड़ीमें बैठकर जमींदारी वसूल करने जा रहे थे। नौकर पीछे-पीछे पैदल चल रहा था कि जमींदार-को रास्तेमें शत्रुओंने घेर लिया। जमींदार साहबने सहायताके लिए नौकर-को आवाज दी तो वह बोला, "मुझे आज छुट्टीपर समझिए, आजकी भी नागा काट लीजिएगा।"

सेवाधर्म, १९२७ ई०

■

बादशाहकी रामायण

एक बादशाह और उसका वज़ीर कहीं जा रहे थे कि एक गाँवमें पण्डितजी कथा बाँच रहे थे। बादशाहने कथाका नाम पूछा तो बतला दिया गया कि रामायणसे राजा राम-सीताकी कथा कही जा रही है। बादशाहके यह बरदाश्त कहाँ कि उसके राजमें किसी अन्य राजाकी कथा सुनी जाये। उसने पण्डितजीको हुक्म दिया कि आइन्दा हमारी रामायण कहा करो।

पण्डितजी भी पूरे घाघ थे। उन्होंने बादशाही रामायण बनानेके लिए छह माहका समय और मुँहमाँगा इनाम ले लिया। पाँच माहके पश्चात् दरबारमें हाजिर होकर अर्ज की,

"जहाँपनाह, रामायण लगभग तैयार है। सिर्फ एक बात लिखनी रह गयी है। राजा रामकी रानी सीताको रावण चुरा ले गया था। आपकी बेगमको कौन उड़ा ले गया है, बस हुजूर उस मूज़ीका नाम बतला दें, ताकि रामायणमें वह दर्ज कर दूँ।"

बादशाहने सुना तो बड़ा चकराया और घबराकर बोला, "ना बाबा ना, हमें माफ करो। हम बाज़ आये ऐसी रामायण बनवानेसे।"

फरवरी १९५१ ई०

■

जाटकी कृतज्ञता

एक मजिस्ट्रेटका नाम चिरागअली था। उसने एक जाटको निर्दोष समझकर मुक्त कर दिया तो जाट कृतज्ञता प्रकट करते हुए बोला,

"अरे साहब, तेरा चिरागअली नाम किस मूरखने रखा है? तू तो मसालअली है।"

जनवरी १९५१ ई०

■

बुढ़िया पुराण

"मैं कितनी वार भौंक चुकी हूँ, मगर आप हैं कि कानपर जूँ तक नहीं रेंगती।"

"आखिर माजरा क्या है? अभीतक तो अच्छी खासी चहकती-फुदकती घूम रही थी, यह यकायक भौंकनेपर उतारू क्यो हो गयी!"

भौंकूँ न तो क्या करूँ? वार-वार कहा कि एक विल्ली पकडवाकर मँगवा दीजिए, मगर आपकी सुने वला! मैं कहती हूँ विल्ली अगर न आयी तो दुलहिनको डोलेसे नही उतारूँगी। फिर न कहना कि मुझे जताया तक भी नही और सवके सामने आवरू खराव कर दी।"

"अगर तुम इसी तरह भौंकती रही तो विल्ली यहाँ ठहरेगी भी क्योकर? विवाह-शादीके मौक़ोपर लोग-वाग विल्लीको घरसे भगा देते हैं और तुम हो कि उसे मँगानेपर व-ज़िद हो। आखिर वात क्या है?"

"वात क्या होती? कई वार कहा कि औरतोके काममें दस्तन्दाज़ी न दिया कीजिए, मगर आप हैं कि वाज़ नही आते! मै ही क्या अनोखी मँगवा रही हूँ। हमारे खानदानमें यह रस्म हमेशासे होती चली आ रही है। क्या भूल गये? जव मैं डोलेमे उतरी थी, तो मेरा मुँह दही-वूरेसे विटारनेके लिए सासजीने नादके नीचेसे दही देनेको आपसे कहा था। और जव आपने नाद उघाडी तो दहीके वदले वहाँ मरी हुई विल्ली पडी थी।"

"वाह क्या कहने हैं तुम्हारी इस याददाश्तके? हम तो कायल हो गये तुम्हारे इस वुढिया पुराणके। वात तो दरअसल यह थी कि विल्ली नादके नीचे दही चाटनेको गयी और उसके धक्केसे नाद उसीके ऊपर गिर पडी। मांको शादीके भीड-भडक्केमें देखनेका अवसर न मिला और विल्ली

गधा कौन, जौहरी या कुम्हार

एक जौहरी जगलसे गुजर रहा था कि उसने एक गधेके गलेमे बेश-कीमत हीरा बँधा हुआ देखा। वह समझ गया कि गधेवाला यह हीरा कही पडा पा गया है और इसे चमकीला पत्थर समझकर गधेके गलेमे बाँध दिया है। अत उसने गधेवालेसे चतुराईसे पूछा, "क्यो बे गधेवाले, इस पत्थरका क्या लेगा ?"

"हुजूर जो चाहे दे दीजिए। गरीब आदमी हूँ।"

"नही, तू ही बता क्या लेगा।"

"हुजूर, आठ आने दे दीजिए।"

"आठ आने बहुत हैं, चार आने लेना है तो यह ले।"

गधेवाला छह आने तकमें देनेको तैयार हो गया, परन्तु जौहरी चार आनेमे ही खरीदना चाहता था। वह थोडी दूर इस खयालसे आगे बढ गया कि गधेवाला झख मारकर उसे चार आनेमे ही लेनेको वापस बुलायेगा।

जौहरी थोडी दूर गया ही था कि एक दूसरा जौहरी उधरसे गुज़रा और वह मुँहमाँगा दाम देकर चलता बना। पहले जौहरीने देखा तो वह झपटकर आया और गधेवालेसे बोला, "क्यो रे वह पत्थर कितनेमें बेच दिया ?"

"हुज़ूर, यह देखो एक रुपया उस पत्थरका मिला है।"

"तू बडा गधा है। लाखोका हीरा एक रुपयेमे बेच दिया।"

"हुज़ूर, मैं अगर गधा न होता तो उसे पत्थर समझकर गधेके गलेमें क्यो बांधता ? मगर हुज़ूरको क्या कहूँ जो पारखी होते हुए भी पत्थरकी कीमतमें भी हीरा लेना मुनासिब न समझा ?"

मार्च १९७१ ई०

■

ससुरालका नाई

एक वार ससुरालके नाईने आकर सूचना दी कि, "तुम्हारी स्त्री विधवा हो गयी है।" सुना तो शेखचिल्लीने आपा पीट लिया। रोनेका शोर सुनकर निठल्ले पडोसी इकट्ठे होकर रोनेका कारण पूछने लगे। कारण वतलानेपर हँसते हुए वोले, "अजी तुम भी अजीव आदमी हो, अरे भई जव तुम जीवित हो, तव तुम्हारी स्त्री विधवा कैसे हो सकती है ?" शेखचिल्लीने कहा, "यह तो मैं भी जानता हूँ कि पतिके स्वर्ग गये वगैर स्त्री विधवा नहीं होती, पर क्या करूँ ? ससुरालका नाई होनेके कारण यह भी तो विश्वासपात्र है, इसकी वातपर भी तो यकीन करना लाज़िमी है।"

वीर, दिल्ली, २ फरवरी १९४० ई०

■

जिद्

एक जाट बोला, "अगर कोई पैंतीस और पैंतीस सत्तर गिना दे तो उसे मै अपनी भैंस दे दूँ। जाटनी घवराकर वोली, "अरे वाह ! क्या भग पी ली है ? पैंतीस और पैंतीस सत्तर तो होते ही हैं। भैंस दे दोगे तो वाल-वच्चे क्या वडका दूध पियेंगे ?" जाट बोला, "तू घवराती क्यो है ? पैंतीस और पैंतीस सत्तर होते है यह तो मै भी जानता हूँ, परन्तु मै किसीके सामने हाँ करके दूँगा, तभी न भैंस लेगा ! मै तो ना ना ही करता रहूँगा।"

वीर, दिल्ली, १३ जनवरी १९४० ई०

■

रोगी डॉक्टर

एक मनुष्यको नेत्रोंका ऐसा रोग था कि उसे प्रत्येक वस्तु दो-दो दिखाई देती थी। संयोगकी बात कि जिस डॉक्टरके पास वह इलाजको पहुँचा, उसे हर चीज चार-चार दिखाई देती थी। डॉक्टरने मुसकराकर आनेका सबब पूछा तो रोगीने कहा, "हुज़ूर, हमको हर चीज़ दो-दो दिखाई देती है।"

डॉक्टरने धीरज बँधाते हुए कहा, "कोई चिन्ताकी बात नहीं, इलाज हो जायेगा। क्या तुम चारोंको यही रोग है?"

रोगी असल हक़ीक़त समझ गया। वह माथेपर हाथ मारकर बोला, "धन्य भाग! मेरी चिन्ता छोड़कर पहले आप अपना इलाज करायें।"

५ मार्च, १९५१ ई०

■

पाँचवाँ सवार

देहलीसे चार घुड़सवार लाहौरको जा रहे थे कि लाहौरके नज़दीक पहुँचनेपर एक गधेवाला भी साथ हो लिया। लाहौर पहुँचनेपर किसीने पूछा,

"क्यों भई सवारो, आप लोग कहाँसे चले आ रहे हैं?"

घुड़सवार मुँह खोलने भी न पाये कि गधेवालेने आगे बढ़कर कहा,

"हम पाँचों सवार देहलीसे आ रहे हैं।"

गधेवालेकी इस मूर्खतापर कि वह भी अपनेको सवारोंमें समझता है, सब हँस पड़े। जो आदमी अपनी हैसियत, लियाक़त, ताकत वग़ैरहसे ज़्यादा बढ़कर बात करता है, उसके लिए तभीसे यह मिसाल बन गयी है कि, "लो भई, ये भी पाँचवें सवारोंमें हैं।"

वीर, दिल्ली, १० फ़रवरी १९४० ई०

■

मरते-मरते भी कुटिलता

छिद्दा बाभन जब मरने लगा तो अपने लडकोको बुलाकर बोला, "तुम लोगोने मेरा आज तक कभी कोई कहा नही माना। आज मैं पर-लोक जा रहा हूँ। मेरी चिताको आग देनेका उसी लडकेको अधिकार होगा जो मेरी अन्तिम अभिलाषा पूरी करेगा। जो प्रतिज्ञा नही करेगा, वह मेरी अरथीको हाथ भी नही लगा सकेगा ?"

छिद्दा बाभनके गुणो और स्वभावसे जो लडके परिचित थे, वे तो चुप रहे, परन्तु एक परदेशमें रहनेवाला पुत्र झाँसेमे आकर जवानीके जोशमे अभिलाषा-पूर्त्ति करनेकी प्रतिज्ञा कर बैठा। छिद्दाने उसके कानमे कहा, "मेरे मरनेपर मेरी लाशके टुकडे करके पडोसियोके घरोमें डालकर पुलिसमें रपट लिखा देना कि इन लोगोने जीतेजी तो मेरे पिताको कष्ट दिये ही, मरनेपर भी शरीरके अग अग काटकर ले गये। मुझे शरीरके छिन्न-भिन्न होनेसे कतई कष्ट न होगा, अपितु पडोसियोकी जो फजीहत होगी, उसकी कल्पना मात्रसे मेरा रोम-रोम पुलकित हो रहा है।"

२७ जनवरी १९४०

■

मुँहके मीठे

एक सज्जनसे दीवालीके अवसरपर कमरेमे झाड-फ़ानूस टाँगनेके लिए एक साहबने सीढी (नसेनी) माँगी तो बोले, "अरे साहब, सीढी देनेमें भला क्या एतराज होता ? मगर क्या करें, श्रीमतीजी सन्दूकमे बन्द करके ताली अपने साथ पीहर ले गयी है।" किसीने उत्सुकतासे पूछा, "अरे भाई, क्या इतनी लम्बी-चौडी सीढी भी सन्दूकमे बन्द हो सकती है ?"

वे बोले, "तो क्या आपकी रायमे कह देना चाहिए था कि सीढी नही देते ? भई हमसे तो इस तरह नटा नही जाता।"

लोग समाज-सेवाकी बडी-बडी बातें बनाते हैं। समाजपर मर-मिटनेके लिए प्रोत्साहन देते हैं। 'यह करो' और 'वह करो'के आदेश देते है। मगर जब अवसर पडनेपर अमल करनेको उनसे कहा जाता है तो इनकार भी नही करते और भलेके-भले बने रहते हैं। किस सादगीसे फरमाते है,

जान से बढ़के है मज़हब से मुहब्बत हमको।
क्या करें, काम से मिलती नहीं फ़ुर्सत हमको॥

वीर, दिल्ली; २ फ़रवरी १९४० ई०

■

ऐंठकी शान

सास-बहूमें झगडा होता तो सास रूठकर बाहर जा बैठती और बहूके मनानेपर घरमें आती। रोजानाके मनानेसे तग आकर बहू एक रोज़ चुप्पी साध गयी। इन्तजार देखते-देखते सासका भी धीरज छूटने लगा। दिन-भर भूखी रहनेके अतिरिक्त जाडेकी रातमें बाहर पडे रहनेके खयालसे उसका रूठना पानी-पानी होने लगा। वह ऐसा उपाय सोचने लगी कि बाइज्जत घरमे प्रवेश किया जा सके और खा-पीकर आराममे सोया भी जा सके। वह तरकीब सोच ही रही थी कि जगलसे चरकर भैंस और उसकी पाडी घरमें घुसने लगी। चट उसने पाडीको पूँछ पकड ली और बडे नखरे दिखाती हुई, पाँव पटकती हुई, मचलती हुई-सी यह कहते हुए अन्दर चली गयी,

"मान जा, मेरी पाडी, मैं अन्दर नही जाती।" गोया पडिया उसे जबरन घरमें खीचे ले जा रही थी।

■

नीलका भैंसा

दिल्लीके चाँदनी चौकमें एक मुहल्लेका नाम नीलका कटरा है। इसके बाहर बहुत-सी दुकानें हैं। देहातमें कटरा भैंसके बच्चेको भी कहते हैं। एक बार किसी जाटसे इस मुहल्लेके पासवाले व्यापारीकी जान-पहचान हो गयी। बातचीतके सिलसिलेमें उसने कहा, "चौधरी, कभी दिल्ली आओ तो नीलके कटरेके पास हमारे यहाँ भी पधारना।"

चौधरी दो-तीन बरस बाद दिल्ली आया तो उसे उस व्यापारीसे मिलनेका भी खयाल आया। उसने यह समझकर कि दो-तीन बरसमे कटरा भैंसा हो गया होगा, नीलके भैंसेका पता पूछा। नीलके भैंसेका पता कौन बताता? आखिर एक आदमीने कहा, "भई, नीलका कटरा तो ये सामने है। नीलके भैंसेका तो हमने नाम भी नही सुना।" चौधरीने भोलेपनसे पूछा, "कटरा तो वह दो-तीन साल पहले ही था, क्या अभीतक वह भैंसा न हुआ होगा?"

फरवरी १९५० ई०

■

खुदा समझिए

वेश्याओके साजिन्दे अकसर मुसलमान होते है और ये मीरासी कहलाते है। पुश्त-दर-पुश्त यही पेशा करते रहनेसे इनकी मीरासी एक जात ही बन गयी है। यह कौम मुसलमानोमे भी नीच समझी जाती है। पंजाबमें इनसे सम्बन्धित अनेक लतीफे मशहूर है।

एक दफेकी बात है कि कचहरीमे एक मीरासी गवाही देनेके लिए पेश हुआ। अपना और बापका नाम बता चुकनेके बाद जब न्यायाधीशने उससे कौम पूछी तो, यह सोचकर कि, "यहाँ मुझे कौन जानता है, मीरासी बताकर कौन अपनेको ज़लील करे" बडे ठाटसे अपनी कौमियत 'शेख़' बता दी। संयोगसे वहाँ कोई शेख भी मौजूद था, और उसे भी गवाही देनी थी। मीरासीके बाद तुरन्त ही उसकी बारी आयी। जब उससे कौम पूछी गयी तो जलकर बोला, "अगर यह कमीन 'मीरासी' अपनेको शेख समझता है तो फिर मुझे तो ख़ुदा समझिए।"

मार्च १९५१ ई०

■

टिकिट बाबूका फूफा

रामू और छोटू जाट रोहतकसे दिल्ली जानेको स्टेशनपर पहुँचे तो छोटूने अपने टिकिटके दाम भी रामूको दे दिये। रामूने पहले अपना टिकिट खरीदा। दोनो टिकिट एक साथ इसलिए नही खरीदे कि शायद टिकिटके भावमे कुछ कमती-बढती हो जायें, या सम्भव है दूसरा टिकिट ही न हो और हिसाबके झझटमें कौन फँसे ?

जब रामू अपना टिकिट ले चुका तो बाबूसे बोला, "एक टिकिट छोटूका भी दे दें।" बाबू हैरान कि यह छोटू स्टेशन कौन-सा हुआ। जब खयालमे नही आया तो पूछा, "यह छोटू कहाँ है ?"

रामू छोटूकी तरफ इशारा करते हुए बोला, "वह खडा तेरा फूफा।"

मई १९५० ई०

■

अदालत है या भाँड़ोंकी महफिल

एक वैश्यका नाम लाला झाऊमल था। वे सूरदास थे और अपने साथ नोकर रखते थे। एक रोज़ अदालतमें किसी मुकदमेंके सिलसिलेमें गये हुए थे। कचहरीमें चपरासीने लालाका नाम लेकर आवाज़ दी तो इस अटपटे नामको सुनकर जजको हँसी आ गयी, और जब लाला उसकी अदालतमे पहुँचे तो जज मज़ाकन बोला, "भाई खूब आदमीका आदमी और ईंधनका ईंधन"।

जजके इस वाक्यको सुनकर उपस्थित वकील, मुंशी आदि सभी हँस पड़े। लालाजी एक ही हाज़िरजवाब थे। चट नौकरके मुँहपर एक हलका-सा चपत मारते हुए बोले, "क्यो बे, मैंने तुझे अदालतमें ले चलनेको कहा था या भाँडोकी महफिलमें लानेको कहा था। चल निकाल मुझे यहाँसे।"

■

लाहौरका पागलखाना

लाहौरके पागलखानेमे एक साहब मुआयना करने गये तो एक पागलने अपनेको हज़रत मुहम्मद बताया। दर्शक उसकी इस जुरअत और खब्तपर हैरान-सा हो रहा था कि पडोसी पागल बोला, "नही, यह झूठ बोलता है, मैंने इसे पैग़म्बर बनाके नही भेजा"।

इसलाम धर्मके अनुसार खुदाने हज़रत मुहम्मदको पैगम्बर बनाकर अरबमें भेजा था। यानी उस दूसरे पागलका भाव यह था कि मै ही खुदा हूँ और यह मेरा भेजा हुआ नही है।

फ़रवरी १९५० ई०

■

नंगा क्या पहने, क्या रखे ?

एक देहाती दिल्ली आया तो फतहपुरीपर सन्दूकोंकी दुकानोंको निहारने लगा। दुकानदारने गाहक समझकर उसे अन्दर ले जाकर सभी क़िस्मके सन्दूक दिखाये और भाव बताये। दुकानमें चारों तरफ़ फिरकर देहाती जब जाने लगा तो दुकानदारने टोका,

"चौधरी, सन्दूक नही लेगा ?"

"के करूँगा ?"

"लत्ते रखना।"

"लत्ते इनमें रखूँगा तो फिर पहनूँगा तेरी ऐसी-तैसी ?"

अप्रैल १९५० ई०

■

घरका भेदी

कुल्हाडियोंसे भरी हुई गाडीको आते देख जगलके दरख्त रोने लगे। एक बूढे दरख्तने रोनेका कारण पूछा तो दरख्तोंने उस गाडीकी ओर इशारा करते हुए कहा,

"इसमें भरी हुई कुल्हाडियाँ हमें काटकर नष्ट कर देंगी।"

बूढा दरख्त मुसकराते हुए बोला, "डरो नही, इनके साथ बैंटेकी हैसियतमें जबतक हमारा भाई लगा न होगा, यह हमें तिलमात्र भी कष्ट नही पहुँचा सकती। यदि रावणका भाई विभीषण रामके साथ, प्रतापका भाई शक्तसिह अकबरके साथ और पृथ्वीराजका भाई जयचन्द शहाबुद्दीन गोरीके साथ न होता तो उन्हें पराजित करनेकी सामर्थ्य किसमे थी ?"

वीर, दिल्ली, २ फरवरी १९४० ई०

■

ठग

एक ठगने किसी हलवाईको पाँच-सौ लड्डू बनवानेका आर्डर देकर दूसरे दुकानदारसे दो-सौ पचास रुपये का सौदा खरीद लिया। सौदा ले चुकनेपर वह बोला, "मेरे साथ आप किसी आदमीको कर दीजिए, ताकि अपने आढतीसे रुपये दिलवा दूँ।" दुकानदारने सहजस्वभाव अपना आदमी उसके साथ कर दिया। ठग उस आदमीको हलवाईकी दुकानपर ले जाकर बोला, "दो-सौ पचास इनको गिनकर दे दीजिए और दो-सौ पचास मैं खुद ले जाऊँगा।"

हलवाईके 'बहुत अच्छा' कहनेपर ठग तो चलता बना। जब हलवाई दो-सौ पचास लड्डू थालमें लगाकर दुकानदारके आदमीको देने लगा तो वह आदमी भी चक्कर खाया। गरज़ बहुत कुछ लडने-झगडनेपर समझ-में आया कि उस ठगने दोनो ही दुकानदारोंको बेवकूफ बनाया।

नवयुग, दिल्ली, १९३३ ई०

■

उचक्का

दिल्लीसे करीब ग्यारह मीलकी दूरीपर कुतुब साहब (महरौली)मे सन् २० से पूर्व फूलवालोकी सैर होती थी। यह दिल्लीका सबसे बडा और सोफियाना मेला समझा जाता था। ज़रा से गाँवमे लाखोकी भीड होती थी। रगीन मिज़ाज, ऐय्याश, शौकीन और तमाशबीनोका यहाँ जमघट लग जाता था। मगलामुखी भी अपने-अपने हथियारोसे सुसज्जित होकर आती थीं। गरज़ हर कौम, हर मजहब, हर रग, हर मिजाज और हर तबीयतका आदमी इस मेलेमें शरीक होता था। अपने ढगका यह एक ही मेला होता था। अबतक इस मेलेकी याद रगीनमिज़ाजोकी तबीयतो-को तडफाये बगैर नही रहती। एक बार कॉंग्रेसके पिकेटिङ् करनेसे यह मेला बन्द हो गया था। तबसे प्राय अबतक बन्द ही है।[1]

उन्ही दिनोकी बात है, जब कि चलते हुए खवेसे-खवा छिलता था, एक सज्जन कन्धेपर कीमती रूमालनुमा शाल डाले हुए मेलेमे खिरामाँ-खिरामाँ चल रहे थे। रूमालको देखकर एक उचक्केके मुँहमे पानी भर आया। यह हज़रत भी एडीसे लेकर चोटी तक ऐन-फैन बने हुए थे। पाँवमें सलेमशाही जूता, पाँच पीके लट्ठेका चूडीदार चुस्त पायजामा, शरीरमें चुन्नटदार तनजेबका अँगरखा और पट्ठेदार बालोपर दिल्लीकी बँधी हुई गोल्लेदार पगडी, आँखोमें सुरमा लगाये, मुँहमे पान खाये, और हाथमें चाँदीकी मूठकी बेत लिये दो कदममें मुसाफिरके पीछे हो लिये, और आहिस्ता-आहिस्ता पीछेसे उसके शालका एक कोना अपने अँगरखे-की तनीमें बाँधकर और ज़रा झटका देकर हाथके इशारेसे मुसाफिरके

---

१ कॉंग्रेस सरकारने इस मेलेको सन् १९४७ के बाद पुन चालू कराया है।

रूमालनुमा शालको अपने कन्धेपर डालकर बडी सजीदगीसे बिना किसी हिचकिचाहटके मुसाफिरके बराबरमें ही चलते रहे। कन्धेपर-से रूमाल गायब हुआ तो मुसाफिर भौंचक रह गया। इधर-उधर देखनेपर रूमालका पता क्या खाक लगता? बराबरमें चलते हुए उचक्केके कन्धेपर पडा हुआ रूमाल देखकर भी कहनेकी हिम्मत नही पडती थी। ठगकी वेशभूषा और शक्लो शबाहत हो माशाअल्लाह ऐसी थी कि किसीको शक करनेकी भी जुरअत न हो। शालवालेको एक-दो मिनिट परेशान होते देख, उचक्का खुद ही बोला,

"कहिए हज़रत किस फिराकमे हैं आप?"

मुसाफिर बदहवास था, बोला, "दो-सौ पचास रुपये का शाल अभी कन्धेपर-से किसीने खींच लिया। बेअदबी मुआफ ठीक आप-जैसा था।"

उचक्का बडी सजीदगीसे बोला, "बेशक ज़रूर होगा। मैं भी अगले साल कुछ कमती-बढती इतनेका ही लाया था। भाई यहाँ तो उचक्कोके मारे नाकमें दम है। इसी वजहसे हमने तो अपना शाल अँगरखेकी तनीमें बांध रखा है, जिससे कोई खीच ही न सके।"

शालवाला बेचारा हाथ मलता रह गया।

नवयुग, दिल्ली, १९३२ ई०

■

चलते-पुर्जे

एक हलवाईकी दुकानपर अधिक भीड देखकर दो चलते-पुर्जोने इस नादिर मौकेसे लाभ उठाना चाहा। एकने जाकर आठ आनेकी मिठाई ली और बाकी आठ आनेके पैसे मांगने लगा। हलवाई कहता था, अभी तुमने मुझे रुपया ही नही दिया और वह कहता था, मैंने आते ही रुपया हाथमें दिया है। इसी तरह तू-तू मैं-मैं होने लगी। भीड इकट्ठी हो गयी, तब पासमें ही खडा हुआ उसका दूसरा साथी बोला, "मियाँ, लाला, इस गडबडमें मेरा रुपया न भूल जाना। पहले मुझे मिठाई तौल दो, बादमें लडा करना।"

एक न शुद दो शुद! हलवाईने सोचा अगर इसे भी मना करता हूँ तो ये सारे तमाशायी मेरे ही सिर हो जायेंगे और कहेंगे ये सारे झूठ बोलते है, सिर्फ तू ही एक सच्चा सोठिया सर्राफ बना है। अत बात न बढे इसलिए बोला, "तुम्हारा रुपया खरा, भूल कैसे जाऊँगा?"

इस तरह झगडा करके दोनोने एक रुपयेकी मिठाई तो ले ही ली।

नवयुग, दिल्ली, १९३३ ई०

■

• • • •

धर्म और इतिहास-ग्रन्थोंमें जो पढ़ा

•

स्वार्थी भावना

अकसर ऋद्धिधारी मुनियोके आहार लेनेके अवसरपर रत्नोकी वर्षा होती है। एक वारका जैन-पुराणोमें उल्लेख है कि एक नगरमें जब ऋद्धि-धारी मुनियोका आगमन हुआ तो भक्तोके घर आहार लेते हुए रत्नोकी वर्षा होने लगी। इस प्रलोभनको एक वुढिया सवरण न कर सकी और उसने भी विधिवत् आहार बनाकर मुनि महाराजको नवधा भक्तिपूर्वक पडगाहा[1]। मुनि महाराजके अँजुली करनेपर बुढिया जल्दी-जल्दी गरम खीर उनके हाथपर[2] खानेके लिए डाल, ऊपरको देखने लगी कि अब रत्नोंकी वर्षा हुई, अब रत्नोकी वर्षा हुई, परन्तु मुनि महाराजका हाथ तो जल गया, किन्तु रत्न न बरसे। मुनि अन्तराय समझकर चले भी गये। मगर बुढिया ऊपरको मुँह किये रत्न-वृष्टिका इन्तजार ही करती रही। उसकी समझमें यह तनिक भी नही आया कि निःस्वार्थ और स्वार्थ-मूलक भाव भी कुछ अर्थ रखते हैं।

अनेकान्त, दिल्ली, फरवरी १९३९

■

---

१ द्वारपर आकर अत्यन्त आदर-सत्कारपूर्वक रसोईमें ले गयी।

२ दिगम्बर जैन-मुनि खडे होकर अपने हाथमें भोजन लेकर खाते हैं, वरतनमें नहीं।

गर्व

भरत चक्रवर्ती छहखण्ड विजय करके वृषभाचल पर्वतपर अपना नाम अंकित करने जब गये, तब उन्हे अभिमान हुआ कि मैं ही एक ऐसा प्रथम चक्रवर्ती हूँ, जिसका नाम पर्वतपर सबसे शिरोमणि होगा, किन्तु पर्वतपर पहुँचते ही उनका सारा गर्व खर्व हो गया, जब उन्होंने देखा कि यहाँ तो नाम लिखने तकको स्थान नही, न जाने कितने और चक्रवर्त्ती पूर्वकालमे यहाँ नाम लिख गये हैं। तब लाचार होकर उन्हें एक नाम मिटाकर अपना नाम अंकित करना पडा।

अनेकान्त, दिल्ली, मार्च १९३९ ई०

■

विकारी नेत्र

किन्हीं आत्म-ध्यानी मुनिराजके पास एक मोक्ष-लोलुप भक्त बैठा था। उसे अपने धर्म-रत होनेका अभिमान था। गृहस्थ होते हुए भी अपनेमें आत्मसंयमकी पूर्णता समझता था। मुनिराजके दर्शनार्थ कुछ स्त्रियाँ आयी तो सयमाभिमानी भक्तसे उनकी ओर देखे बिना न रहा गया। पहली बार देखनेपर मुनिराज कुछ न बोले, किन्तु यह देखनेका क्रम जब एक बारसे अधिक जारी रहा तो मुनिराज बोले, "वत्स, प्रायश्चित्त लो!"

"प्रभो! मेरा अपराध?"

"ओह! अपराध करते हुए भी उसे अपराध नही समझते, वत्स! एक बार तो अनायास किसीकी ओर दृष्टि जा सकती है, किन्तु बार-बार तो विकारी नेत्र ही उठेंगे, और आत्मामें विकार आना, यही पतनका उद्गम है। आत्मसयमका अभ्यासी प्रायश्चित्त-द्वारा ही विकारोपर विजय प्राप्त कर सकता है"

मोक्ष-लोलुप भक्तको तब अपने सयमकी अपूर्णता प्रतीत हुई।

अनेकान्त, दिल्ली, जून १९३९ ई०

■

पापीसे घृणा

"प्रभो ! क्या मुझे दीक्षित नही किया जायेगा ?"

"नहीं ।"

"इसका कारण ?"

"यही कि तुम अज्ञातपुत्र हो ।"

"फिर इसका कोई उपाय ?"

"उपाय ? अपने पिताकी स्वीकृति दिलानेपर दीक्षित हो सकोगे ।"

"दीक्षित हो सकूँगा—किन्तु पिताकी स्वीकृतिपर ! ओह ! मैंने तो उन्हें आज तक नही देखा स्वामिन्, दीनबन्धु, क्या पितृहीनको धर्म-पालक होनेका अधिकार नही है ? सुना है, धर्मका द्वार तो सभी शरणागत प्राणियोके लिए खुला हुआ है ।"

"वत्स, तुम्हारा कथन सत्य है, किन्तु तुम अभी सुकुमार हो, इसलिए तुम्हें दीक्षित करनेसे पूर्व उनकी सम्मतिकी आवश्यकता है ।"

पन्द्रह वर्षका बालक निरुत्तर हो गया। उसके फूल-से गुलाबी कपोल मुरझा-से गये। सरल नेत्रोके नीचे निराशाकी एक रेखा सी खिंच गयी, और स्वच्छ उन्नत ललाटपर पसीनेकी बूँदें झलक आयी। उसका उत्साह भग हो गया। घर लौटकर वह अपराधीकी तरह दरवाज़ेसे लगकर खडा हो गया। उसकी स्नेहमयी माँ पुत्रका मुरझाया हुआ मुख देख प्यारसे सिरपर हाथ फेरती हुई बोली, "क्यो मुन्ने, क्या दीक्षित नही हुए ?"

"नहीं ।"

"क्यो ?"

"वे कहते है, पिताकी अनुमति दिलाओ ।"

माँने सुना तो कलेजा थामकर रह गयी। उसका पापमय जीवन चलचित्रकी तरह नेत्रोके सामने आ गया। वह नही चाहती थी कि इस

सरलहृदय वालकको पापका नाम भी मालूम होने पाये। इसलिए उसके होश सम्भालनेसे पूर्व ही वह अपना सुधार कर चुकी थी। उसे अपने पुत्र-का भविष्य उज्ज्वल करना था। अत वह वोली,

"जाओ बेटा, कहना कि मेरे पिताका नाम तो माता भी नही जानती, फिर मैं किसकी अनुमति दिलाऊँ ?"

वालक दौडा हुआ आचार्य्यके पास गया और एक साँसमे माँका सन्देश कह सुनाया।

आचार्य्य गद्गदकण्ठसे बोले, "वत्स, परीक्षा हो चुकी। तू सत्यवादी है इसलिए आ, धर्ममें दीक्षित होनेका अवश्य अधिकारी है।"

कुछ कुल, जाति-गर्वोन्मत्त भक्त आचार्य्यके इस कार्यकी आलोचना करने लगे। भला एक वेश्या-पुत्र और वह धर्ममें दीक्षित किया जाये। असम्भव है, ऐसा कभी न हो सकेगा।

क्षमाशील प्रभु उनके मनोभाव ताड गये। वोले, "विचारशील सज्जनो, पापीसे घृणा न करके उसके पापसे घृणा करनी चाहिए। मानव-जीवनमें भूल हो जाना सम्भव है। पापी मनुष्यका प्रायश्चित्त-द्वारा उद्धार हो सकता है, किन्तु जो जान बूझकर पाप-कर्ममें लिप्त है, अपना मायावी रूप बनाकर लोगोको धोखा देते है, एक पापको छिपानेके लिए जो अनेक पाप करते है—उनका उद्धार होना कठिन है। जव धर्म पतित-पावन कहलाता है, तव एक वेश्याका भी उसके पालन करनेसे कल्याण क्यो नही हो सकता ? फिर यह तो वेश्या-पुत्र है, इसने तो कोई पाप किया भी नही। पाप यदि किया भी है तो इसकी माताने किया है। उसका दण्ड इसे क्यो ?"

आचार्य्यकी वाणीमें जादू था, सवने प्रेम-विभोर होकर अज्ञात-पुत्रको गलेसे लगा लिया।

अनेकान्त, दिल्ली, जुलाई १९२९ ई०

■

साधु-परीक्षा

तीन-सौ वर्ष पूर्व आगरेमे जब कविवर प० बनारसीदासजी जैन जीवित थे, तब वहाँ एक साधु आये। साधुके क्षमादि गुणोकी प्रशसा सुनी तो कविवर भी दर्शनार्थ पधारे, और दीनतापूर्वक साधु महाराजसे बोले, "दया-सिन्धु, क्या मै आपका शुभ नाम मालूम करनेकी धृष्टता कर सकता हूँ?"

"मुझे शीतलप्रसाद कहते है।"

कविवर नाम सुनकर वहाँ होनेवाली तत्त्वचर्चामें लीन हो गये। फिर थोडी देर बाद अपना भुलक्कड स्वभाव बताते हुए साधुसे नाम पूछ बैठे। साधुने अन्यमनस्क भावसे नाम दोहरा दिया। कविवरको सन्तोष न हुआ। फिर जरा-सी देरके बाद नाम पूछा तो साधु महाराज आगबबूला हो गये और झुँझलाकर बोले, "तू भी अजीब आदमी है। अबे! दस बार कह दिया, 'हमारा नाम है शीतलप्रसाद! शीतलप्रसाद!! शीतलप्रसाद!!!' फिर क्यो दिमाग चाटता है?"

कविवरने साधुका यह कोपकाण्ड देखा तो उठकर चल दिये और जाते हुए बोले, "महाराज, आपका नाम शीतलप्रसाद नही, ज्वालाप्रसाद मालूम होता है।"

वीर, दिल्ली, २७ जनवरी १९४० ई०

■

लक्ष्य

एक काली मिर्च धागेमें बाँधकर पीपलके वृक्षपर लटकाते हुए गुरु द्रोणाचार्यने कौरव-पाण्डव सब शिष्योंसे कहा, "तुम्हें अपने बाणोंसे यह मिर्च नीचे गिरानी होगी।"

फिर क्रमश प्रत्येक शिष्यको उसे बाण-द्वारा नीचे गिरानेकी आज्ञा दी। साथ ही बाण छोडनेसे पूर्व वे प्रत्येक शिष्यसे पूछते जाते थे, "तुम्हे इस वृक्षपर मिर्चके अतिरिक्त और क्या दिखाई देता है ?"

प्राय सभी शिष्योंका समान उत्तर था, "वृक्ष, तना, डालियाँ, टहनी, पत्ते, पीपली।" उनमें-से जब कोई भी लक्ष्यको न भेद सका, तब अर्जुनको लक्ष्य भेदनेके लिए आदेश दिया गया और उससे भी पूछा गया, "अर्जुन, तुम्हें काली मिर्चके अतिरिक्त और क्या-क्या दिखाई देता है ?"

अर्जुनका लक्ष्य काली मिर्चकी ओर था, उसी ओर मुँह किये बोला, "गुरुदेव, यहाँ काली मिर्चके सिवा और तो कुछ भी नही है, मुझे तो आप भी दिखाई नही दे रहे, मुझे स्वय अपना अस्तित्व मालूम नही।"

गुरुदेवके सकेतपर बाण छूटा और वह काली मिर्चको लेकर नीचे आ गिरा। गुरुदेव अर्जुनको शाबाशी देकर अनुत्तीर्ण शिष्योंसे हँसकर बोले,

"अपने लक्ष्यको छोडकर जो दूसरी ओर दृष्टिपात करता है, वह सफल नही होता। मोक्ष-लोलुप ससारको भी देखे तो मोक्ष कैसे पाये ? गुण, गुणी, ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय और ध्यान, ध्येय, ध्याता, तू और मैं, यह और वहका जब अन्तर्द्वन्द्व आत्मामें मचा हो, तब आत्माके परम लक्ष्य परमात्मा पदकी प्राप्ति कहाँ ? तुम लोग मिर्चको न देखकर टहनी, पत्ते ही देख सके, अत जो तुम्हारा लक्ष्य था, उसीको भेद सके, यदि अर्जुनकी तरह तुम्हारा लक्ष्य काली मिर्च होता तो तुम भी उसे भेदनेमे सफल होते।"

■

रूपका मद

स्वर्गमे जब देवराज इन्द्र जी भरकर सनत्कुमार चक्रवर्तीकी सुन्दरता-का बखान कर चुके तो श्रोतृ-मण्डलमें एक फुसफुसाहट-सी फैल गयी।

कुछने कहा, "देवराज आज आवश्यकतासे अधिक अतिशयोक्ति कर गये है।"

एकने टीप कसी, "असत्य भाषण भी एक कला है। आजका मुख्य विषय ही यह था।"

कई एकने अपनी सम्मति बनायी, "मालूम होता है सनत् अधिक कुरूप है। देवराजने उपहास करनेका यह नवीन ढग निकाला है।"

और उन सबमें जो एक मनचला था, उसने मनमें सोचा, "क्यो किसीकी नीयतपर आक्रमण किया जाये। चलकर नीर-क्षीर-विवेक ही क्यो न कर लिया जाये।

प्रात काल सनत् चक्रवर्ती मल्लशालामें सहस्रो पहलवानोको जोर करा चुके थे। साँस फूली हुई थी। शरीर पसीनेसे तर-बतर और धूल-धूसरित था। तभी प्रहरीने आकर निवेदन किया,

"एक वृद्ध ब्राह्मण आपके दर्शन करके तीर्थ-यात्राको प्रस्थान करना चाहता है। उनसे काफ़ी कहा गया कि महाराज इस समय दर्शन देने योग्य स्थितिमें नही, परन्तु उसका आग्रह है कि प्रस्थानका मुहूर्त निकट है, दर्शन किये बिना प्रस्थान होगा नही और प्रस्थानका समय टालना भी सम्भव नहीं है।"

दर्शन करनेकी अनुमति मिलनेपर विप्रने देखा तो अपलक देखता ही रहा, "इस रूप-छटाका वर्णन तो देवराज सहस्राश भी नही कर सके। जिसके रोम-रोमपर कामदेव न्योछावर होता हो, जिसकी आभाके सम्मुख

रति लोट-पोट होती हो, उसकी सुन्दरताका बखान क्या इतना संक्षिप्त किये जाने योग्य था ?"

विप्रको रूप देखनेमे निमग्न देखा तो सनत् बोले, "ब्रह्मदेव, यदि तुम्हें सचमुच देखनेका चाव है तो हमें दरबारमें देखो ।"

विप्रने प्रस्थान स्थगित कर दिया, किन्तु रूप देखनेके लोभको संवरण न कर सका ।

दरबारमे महाराज आये तो मानो बिजली कौंध गयी । एक तो रूप और उसपर सलीकेसे पहने हुए वस्त्र-आभूषण, फिर इत्रकी महक, पानकी लाली, लोग कलेजा थामकर रह गये ।

"विप्र, देखा ?"

"देखा, परन्तु वह बात कहाँ ?"

"क्या ?"

"जी, तनिक पीकदानमे थूककर देखिए ।"

थूका तो सहस्रो कीटाणु उसमें बिलबिलाहट कर रहे थे । तनिक-सा रूपमद होनेसे दर्शनका पुन निमन्त्रण था, उसी मदके उपहारस्वरूप उस नश्वर शरीरमें सैंकडो रोग आ गये । संसार-वैभवकी क्षणभंगुरताका ध्यान आते ही सनत्ने वैभवको ठुकराकर आत्माके सच्चे रूपको निखारनेके लिए वनोंमें जाकर जैन-दीक्षा ले ली ।

१९५० ई०

■

जीवन्मुक्त

एक सेठ अपने कारोवारमें इतने व्यस्त रहते थे कि भोजन और शयन भी समयपर नही कर पाते थे और पत्नी एव सन्तानसे तो वार्त्तालाप करनेको समय था ही नही। उनकी पत्नीने एक रोज़ अवसर पाकर कहा,

"आप तनिक-से कारोवारमे इतने व्यस्त है कि तन-मनकी भी सुध नही। जव आपका यह हाल है तो भरत चक्रवर्तीका न जाने क्या हाल होगा, जिनके पास छ्यानवे हज़ार रानियाँ और छह खण्डका राज्य है।"

सेठजी वोले, "मैं स्वय कई वार सोचता हूँ कि वे कैसे इतना वडा शासन-कार्य चलाते होगे और कव-कव वे रानियोंसे वार्त्तालाप करते होगे ?"

किसी तरह समय निकालकर सेठ साहव दरवारमें गये तो नगर-श्रेष्ठीके नाते भरतने इनसे कुशलक्षेम तथा उपस्थितिका कारण पूछा। कारण जान लेनेपर भरतने कहा, "श्रेष्ठिन्, जव आप आये है तो हमारा रनवास भी देख लीजिए। आप कव-कव आते हैं। आपकी जिज्ञासाकी पूर्ति भी कर दी जायेगी।"

अन्त पुरकी महिलासचिवको साथ कर दिया गया और आदेश दे दिया गया कि किसीको भी पहलेसे सूचना देनेकी आवश्यकता नही, जो जिस स्थितिमे है उसे उसी प्रकार रहने दिया जाये। नगरश्रेष्ठीसे कोई परदा नहीं है। साथ ही नगरश्रेष्ठीके हाथमें एक तेलका भरा हुआ कटोरा दे दिया गया और कानमे कह दिया, श्रेष्ठिन्, आप जी भरकर हमारा रन-वास देखें, परन्तु कटोरेसे तेलकी एक भी वूँद न गिरे यह ध्यान रखें। एक भी वूँद गिरनेमे प्राण सकटमें पड जायेंगे।"

बुद्धकी करुणा

राजकुमार गौतम उद्यानमें सैर कर रहे थे कि उनके पाँवोंके पा
एक पक्षी आकर गिरा। राजकुमारने देखा उसके परोंमें एक तीर चुभ
है और वह बडी बेचैनीसे छटपटा रहा है। दयार्द्र होकर गौतमने पक्षीक
उठाया और वे बडे यत्नसे रक्तमें भीगे हुए तीरको निकालने लगे। गौत
अभी तीर निकाल भी न पाये थे कि हाथमें धनुष-बाण लिये एक शिकारी
आकर रोष-भरे स्वरमें कहा,

"आपको मेरा शिकार उठानेका क्या अधिकार था ?"

राजकुमार गौतम स्नेह-भरे स्वरमें बोले, "जब आपको उसके प्राण
तक लेनेका अधिकार है, तब मुझे उसके प्राण बचानेका भी अधिकार न
दोगे भाई !"

राजकुमारकी सहृदयतासे पराजित शिकारी धनुष-बाण फेंक उनके
चरणोंमें गिर पडा।

१९५० ई०

■

मधुर वचन

पाँचो पाण्डव द्रौपदी-सहित जब वनोमे निर्वासनके दिन काट रहे थे, असह्य आपत्तियाँ झेलते हुए भी परस्पर प्रेमपूर्वक सन्तोषमय जीवन व्यतीत कर रहे थे, तब एक बार श्रीकृष्ण और उनकी पत्नी सत्यभामा उनसे मिलने गये। विदा होते समय एकान्त पाकर सत्यभामाने द्रौपदीसे पूछा,

"बहन, पाँचो पाण्डव तुम्हें प्रेम और आदरकी दृष्टिसे देखते है, तुम्हारी तनिक-सी भी बातकी अवहेलना करनेकी उनमे सामर्थ्य नही है, वह कौन-सा मन्त्र है, जिसके प्रभावसे यह सब तुम्हारे वशीभूत हैं ?"

द्रौपदीने सहज-स्वभाव उत्तर दिया, "बहन, पतिव्रता स्त्रीको तो ऐसी बात सोचनी भी नही चाहिए। पति और कुटुम्बीजन सब मधुर वचन तथा सेवासे प्रसन्न होते हैं, मन्त्रादिसे वशीभूत करनेके प्रयत्नमे तो वे और भी परे खिचते हैं।"

अनेकान्त, दिल्ली; फ़रवरी १९३९ ई०

■

युधिष्ठिरका पाठ

कौरव और पाण्डव जब बचपनमें पढा करते थे, तब एक रोज़ उन्हें पढाया गया, "सत्य बोलना चाहिए, क्रोध छोडना चाहिए।" दूसरे रोज़ सबने पाठ सुना दिया, किन्तु युधिष्ठिर न सुना सके और वह खोये हुए-से चुप-चाप बैठे रहे। उनके मुँहसे उस रोज़ एक शब्द भी नही निकला।

गुरुदेव झुँझलाकर बोले, "युधिष्ठिर, तू इतना मन्दबुद्धि क्यो है? क्या तुझे चौबीस घण्टेमें ये दो वाक्य कण्ठस्थ नही हो सकते?"

युधिष्ठिरका गला भर आया। वह अत्यन्त दीनतापूर्वक बोले, "गुरुदेव, मैं स्वय अपनी इस मन्द बुद्धिपर लज्जित हूँ। चौबीस घण्टेमें तो क्या, जीवनके अन्त समय तक इन दोनो वाक्योको कण्ठस्थ कर सका—जीवनमे उतार सका—तो अपनेको भाग्यवान् समझूँगा। कलका पाठ इतना सरल नही था, जिसे मैं इतनी शीघ्र याद कर लेता।"

गुरुदेव तब समझे कि पाठ याद करना जितना सरल है, उसे जीवनमें उतारना उतना सरल नही।

अनेकान्त, दिल्ली, फरवरी १९३९ ई०

■

भाईका अपमान

पाण्डवोका चिरशत्रु दुर्योधन जव गन्धर्वो-द्वारा वन्दी कर लिया गया, तव धर्मराज युधिष्ठिर अत्यन्त व्याकुल हो उठे। उन्होने भीमसे दुर्योधनको छुडा लानेका अनुरोध किया। भीम युधिष्ठिरकी आज्ञाकी अवहेलना करता हुआ वोला,

"मैं और उस पापीको छुडा लाऊँ? जिस अधमके कारण आज हम दर-दरके भिखारी और दाने-दानेके मोहताज हैं, जिस पापात्माने द्रौपदीका अपमान किया और जो हमारे जीवनके लिए राहु वना हुआ है, उसी नारकीय कीडेके प्रति इतनी मोह-ममता रखते हुए आपको कुछ ग्लानि नही होती धर्मराज?"

भीमके रोष-भरे उत्तरसे धर्मराज चुप हो रहे, किन्तु उनकी आन्तरिक वेदना नेत्रोकी राह मुँहपर अश्रुरूपमें लुढक पडी। अर्जुनने यह देखा तो लपटकर गाण्डीव धनुष उठाया और जाकर शत्रुको युद्धके लिए ललकारकर, और उसे पराजित करके, दुर्योधनको वन्धनसे मुक्त कर दिया। तव धर्मराज भीमसे हँसकर वोले,

"भैया, हम आपसमें भले ही मतभेद और शत्रुता रखते है, कौरव सौ और हम पाण्डव पाँच, वेशक जुदा-जुदा हैं। हम आपसमें लडेंगे, मरेंगे, किन्तु किसी दूसरेके मुकाविलेमे हम सौ या पाँच नही, अपितु एक-सौ पाँच हैं। ससारकी दृष्टिमें अव भी हम भाई-भाई हैं। हममें-से किसी एकका अपमान हमारे समूचे वशका अपमान है—यह वात तुम नही, अर्जुन जानते हैं।"

युधिष्ठिरके इस स्पष्टीकरणसे भीम मुँह लटकाकर रह गये।

अनेकान्त, दिल्ली, मार्च १९३९ ई०

■

पापीका अन्न

महाभारत-युद्धमें कौरव-सेनापति भीष्म पितामह जब अर्जुनके बाणोंसे घायल होकर रण-भूमिमें गिर पड़े तो कुरुक्षेत्रमें हाहाकार मच गया। कौरव-पाण्डव पारस्परिक वैर-भाव भूलकर गायकी तरह डकराते हुए उनके समीप पहुँचे। भीष्मपितामहकी मृत्यु यद्यपि पाण्डव-पक्षकी विजय-सूचक थी, फिर भी थे तो वे पितामह न? धर्मराज युधिष्ठिर बालकोंकी भाँति फुप्पा मारकर रोने लगे। अन्तमें धैर्यपूर्वक रुँधे हुए कण्ठसे बोले,

"पितामह, हम ईर्ष्यालु, दुर्बुद्धि पुत्रोंको, इस अन्त समयमें, जीवनमें उतारा हुआ कुछ ऐसा उपदेश देते जाइए, जिससे हम मनुष्य-जीवनकी सार्थकता प्राप्त कर सकें।"

धर्मराजका वाक्य पूरा होनेपर अभी पितामहके ओठ पूरी तरह हिल भी न पाये थे कि द्रौपदीके मुखपर एक हास्यरेखा देख सभी विचलित हो उठे। कौरवोंने रोष-भरे नेत्रोंसे द्रौपदीको देखा। पाण्डवोंने इस अपमान और ग्लानिको अनुभव करते हुए सोचा,

"हमारे सिरपर उल्कापात हुआ है और द्रौपदीको हास्य सूझा है।"

पितामहको कौरव-पाण्डवोंकी मनोव्यथा और द्रौपदीके हास्यको भाँपनेमें विलम्ब न लगा। वे मधुर स्वरमें बोले,

"बेटी द्रौपदी, तेरे हास्यका मर्म मैं जानता हूँ। तूने सोचा, जब भरे दरबारमें दुर्योधनने साड़ी खींची, तब उपदेश देते न बना, वनोंमें पशु-तुल्य जीवन व्यतीत करनेको मजबूर किया गया, तब सान्त्वनाका एक शब्द भी मुँहसे न निकला, कीचक-द्वारा लात मारे जानेके समाचार

भी साम्यभावसे सुन लिये, रहने योग्य स्थान और क्षुधा-निवृत्तिको भोजन माँगनेपर जब कौरवोंने हमें दुतकार दिया, तब उपदेश याद न आया। सत्य और अधिकारकी रक्षाके लिए पाण्डव युद्ध करनेको विवश हुए तो सहयोग देना तो दूर, उलटा कौरवोंके सेनापति बनकर हमारे रक्तके प्यासे हो उठे, और जब पाण्डवों-द्वारा मार खाकर ज़मीन सूँघ रहे हैं—मृत्युकी घड़ियाँ गिन रहे हैं—तब हमीको उपदेश देनेकी लालसा बलवती हो रही है। बेटी, तेरा यह सोचना सत्य है। तू मुझपर जितना हँसे कम है। परन्तु पुत्री, उस समय मुझमे उपदेश देनेकी क्षमता नही थी, पापात्मा कौरवोंका अन्न खाकर मेरी आत्मा मलीन हो गयी थी, दूषित रक्त नाड़ियों-में बहनेसे बुद्धि भ्रष्ट हो गयी थी, किन्तु वह सब अपवित्र रक्त अर्जुनके बाणोंने निकाल दिया है। अत आज मुझमे सन्मार्ग बतानेका साहस हो सकता है।"

अनेकान्त, दिल्ली, अप्रैल १९३९ ई०

■

दृष्टि-भेद

महर्षि व्यासदेवके पुत्र शुकदेव ससारमें रहते हुए भी उससे विरक्त थे। वे आत्म-कल्याणकी भावनासे प्रेरित होकर घरसे जगलकी ओर चल दिये। तव व्यासदेव भी पुत्रमोहसे वशीभूत, उन्हें समझाकर घर वापस लिवा लानेके लिए पीछे-पीछे चले। मार्गमें दरियाके किनारे कुछ स्त्रियाँ स्नान कर रही थी। व्यासदेवको देखते ही सवने वडी तत्परतासे उचित परिधान लपेट लिये—अंगोपाग ढँक लिये।

महर्षि व्यासदेव बोले, "देवियो, वह अभी मेरा जवान पुत्र शुक-देव तुम्हारे आगेसे निकलकर गया है, उसे देखकर भी तुम नही सकुचायी, ज्योकी त्यो स्नान करती रही। जो युवा था, सव तरह योग्य था, उससे तो परदा न किया, और मुझ अर्द्धमृतक समान वृद्धसे लजाकर परदा कर लिया, यह भेद कुछ समझमें नही आया।"

स्त्रियाँ बोली, शुकदेव युवा होते हुए भी युवकोचित विकारोसे रहित है। वह स्त्री-पुरुषके अन्तरको और उसके उपयोगको भी नहीं जानता, उसकी दृष्टिमे सारा विश्व एक रूप है। सासारिक भोगोपभोगोसे वालकके समान अवोध है, परन्तु देव, आपकी वैसी स्थिति नही है। इसलिए आपकी दृष्टिसे छिपनेके लिए परिधान लपेट लिये है।"

अनेकान्त, दिल्ली, मई १९२९ ई०

■

भ्रातृ-प्रेम

वनोंमें भटकते हुए पाण्डवोको प्यास लगी तो सहदेव पानी लेने तालावपर गये। चारो भाइयोकी जीभ सूखकर तालुसे लग गयी, मगर सहदेव न आये। तब नकुल, भीम, अर्जुन भी एकके बाद एक गये, मगर कोई भी वापस न आया। पानी लाना तो दरकिनार, खाली हाथ भी कोई न लौटा। तब लाचार स्वय उनकी टोहमें धर्मराज युधिष्ठिर पधारे। पानी न मिलनेसे जो एक झुँझलाहट मनमें हो रही थी, वहाँ अब चिन्ताने डेरा जमाया। प्यासकी बेचैनीका स्थान बरबस आशकाने ले लिया।

तालावपर जाकर देखा तो चारो भाई बेहोश पडे हुए थे। सोचा, प्यासके कारण ही ऐसा हुआ है। अत उनके मुँहमे पानी डालनेके लिए युधिष्ठिरने ज्यो ही तालावसे पानी लेना चाहा कि एक गूँजती हुई आवाज-से चौंककर देखा तो सामने एक विशाल दैत्याकार छाया दीख पडी।

छाया द्वारा बतलाया गया कि "तालावपर उसीका अधिकार है। और इस तालावका पानी वही पीनेका अधिकारी हो सकता है, जो उसके इन प्रश्नोंका उत्तर दे सके।" वे प्रश्नोत्तर निम्नप्रकार हुए,

प्र० उत्तम धर्म कौन-सा है ?

उ० जो दु खसे छुटकारा दिलाये।

प्र० अनुकरणीय मार्ग कौन-सा है ?

उ० महापुरुप जिस मार्गसे गये है।

प्र० आश्चर्य क्या है ?

उ० मृत्युका न आना।

प्र० सुख क्या है ?

उ० निराकुलता।

युधिष्ठिरके उत्तर पसन्द आनेपर पानी पीनेकी आज्ञा भी प्रदान हो गयी, साथ ही पुरस्कार-स्वरूप चारों भाइयोंमें-से एकका जीवन माँगनेकी अनुमति भी।

धर्मराजने सहज स्वभाव बतलाया कि माँगना उन्हें कभी आया नहीं, फिर भी बन्धु-प्रेमसे लाचार नकुल या सहदेवके जीवन-दानके वे अभिलाषी हैं।

मनुष्याकार छाया ठहाका मारकर हँसती हुई प्यारपूर्वक बोली, "धर्मराज, तुम्हारी मूर्खताके अनेक उदाहरण सुने थे, पर प्रत्यक्ष अनुभव आज ही हुआ। यह निश्चित है कि अन्यायके प्रतिकारके लिए तुम्हें कौरवोंसे युद्ध करना होगा, और उस युद्धमें विजयकी आशा भीम और अर्जुनके सहयोगपर ही अवलम्बित है। फिर भी उनका जीवन न चाहकर सहदेव या नकुलका जीवन चाहते हो, जो रण-कौशलसे सर्वथा अनभिज्ञ हैं। मालूम होता है आपत्तियोंको चट्टानोंसे टकरा-टकराकर तुम्हारी विचारशक्ति भी नष्ट-भ्रष्ट हो गयी है।"

धर्मराज बन्धुओंपर आयी हुई इस आपत्तिसे अत्यन्त व्याकुल थे। मनमें मानापमानका ध्यान लाये बिना ही बोले,

"मेरे सम्बन्धमें आप जो भी उचित समझें, सम्मति बनायें। मगर मेरी इस अभिलाषामें मेरा स्वार्थ केवल इतना ही है कि नकुल-सहदेवकी जननी मेरी अत्यन्त स्नेहमयी माँ माद्री स्वर्गासीन हो चुकी है और अपनी जननी कुन्तीका पुत्र मैं जीवित हूँ ही। यदि इनमें-से किसी एकको जीवित न कराकर भीम या अर्जुनको जीवित कराता हूँ तो वे सम्भव है यह सोचकर व्यथित हों कि संसारमें कुन्तीके दो पुत्र हैं, परन्तु मेरा एक भी नहीं। युधिष्ठिरने अपने सहोदर बन्धुका ही जीवन चाहा, सौतेलेका नहीं। शायद मेरी पक्षपातकी भावना उन्हें ठेस न पहुँचाये, क्योंकि वे तो संसारकी मोह-मायासे दूर हैं, परन्तु संसारमें एक भ्रामक उदाहरण प्रस्फुटित हो जायेगा। इसी बातको लेकर मेरी यह भावना हुई है। आप इसे मेरी

मूर्खता भी समझें तो मुझे कोई पछतावा नही होगा।"

चारो भाई अँगडाई लेते हुए उठ बैठे। हवा जो कौतूहलवश तमाशा देखने खडी हो गयी थी, वह यह कहती हुई कि, "दुनिया मूर्ख नही है जो युधिष्ठिरको धर्मराज कहती है"—ससारके कोने-कोनेमें भ्रातृ-प्रेमका यह समाचार सुनाने दौड गयी।

१९५० ई०

■

अकबरकी विशालहृदयता

पानीपतकी दूसरी लडाईमें हेमू युद्ध करता हुआ अकबर बादशाहके सेनापति-द्वारा वन्दी कर लिया गया। वन्दी अवस्थामे वह अकबरके समक्ष लाया गया। उस समय अकबरकी आयु केवल १३ वर्षकी थी। पुरातन प्रथाके अनुसार अकबरको हेमूका वध करनेके लिए कहा गया, किन्तु यह कहकर कि,

"नि सहाय और वन्दी मनुष्यपर हाथ उठाना पाप है।"

प्राण लेनेसे इनकार कर दिया। बालक अकबरकी इस दूरदर्शिता और विशालहृदयताकी उपस्थित जन-समूहने मुक्तकण्ठसे प्रशसा की। अकबर अपने ऐसे ही लोकोत्तर गुणोके कारण इस छोटी-सी आयुमें कांटोका ताज पहनकर विशाल साम्राज्य स्थापित कर सका था।

अनेकान्त, दिल्ली, अप्रैल १९३९ ई०

■

विरोधीके प्रति व्यवहार

हजरत मुहम्मद—जवतक अरववालोने उन्हें नवी स्वीकृत नही किया था, तवकी वात है—घरसे रोज़ाना नमाज़ पढने मस्जिदमे तशरीफ़ ले जाते तो रास्तेमें एक वुढिया उनके ऊपर कूडा डालकर उन्हें रोज़ाना तंग करती। हजरत कुछ न कहते, चुपचाप मन-ही-मनमें ईश्वरसे उसे मुवुद्धि देनेकी प्रार्थना करते हुए नमाज पढने चले जाते। हस्वदस्तूर मुहम्मद साहव एक रोज़ उधरसे गुज़रे तो वुढियाने कूडा न डाला। हज़रतके मनमें कौतूहल हुआ—आज क्या वात है जो वुढियाने अपना कर्त्तव्य पालन नहीं किया। दरवाजा खुलवानेपर मालूम हुआ कि वुढिया वीमार है। हज़रत अपना सव काम छोड उसकी तीमारदारी (परिचर्या) में लग गये। वुढिया हजरतको देखते ही काँप गयी, उसने समझा कि आज उसे अपनी उद्दण्डताओंका फल अवश्य मिलेगा, किन्तु वदला लेनेके वजाय उन्हें अपनी सेवा करते देख, उसका हृदय उमड आया और उसने मुहम्मद साहवपर ईमान लाकर इस्लामधर्म ग्रहण कर लिया।

हज़रतके जीवनमे कितनी ही ऐसी झाँकियाँ हैं, जिनसे विदित होता है कि सुधारकोंके पथमें अनेक वाधाएँ उपस्थित होती हैं और उन सवको पार करनेके लिए—विरोधियोंको अपना मित्र वनानेके लिए—उन्हें कितने धैर्य और प्रेममय जीवनकी आवश्यकता पडती है। विरोधीको नीचा दिखाने, वदला लेने आदिकी हिंसक भावनाओंसे अपना नहीं वनाया जा सकता। कुमार्गरत, भूला-भटका, प्रेम-व्यवहारसे ही सन्मार्गपर आ सकता है।

अनेकान्त, दिल्ली; फ़रवरी १९३९ ई०

स्वावलम्बी बादशाह

गुलाम-वंशीय नासिरुद्दीन बादशाह अत्यन्त सच्चरित्र और धर्मनिष्ठ था। आजीवन उसने राज-कोषसे एक भी पैसा न लेकर अपनी हस्तलिखित पुस्तकोसे जीवन-निर्वाह किया। भारतवर्षका इतना बडा बादशाह होनेपर भी, अन्य मुसलमान शासकोके रिवाजके विपरीत, उसके एक ही पत्नी थी। घरेलू कार्योंके अलावा रसोई भी स्वय बेगमको बनानी पडती थी। एक बार रसोई बनाते समय बेगमका हाथ जल गया तो उसने बादशाहसे कुछ दिनके लिए रसोई बनानेके लिए नौकरानी रख देनेकी प्रार्थना की। मगर बादशाहने यह कहकर बेगमकी प्रार्थना अस्वीकार कर दी कि,

"राज-कोषपर मेरा कोई अधिकार नही है, वह तो प्रजाकी ओरसे मेरे पास धरोहर मात्र है, और धरोहरमें-से अपने कार्योंमें व्यय करना अमानतमें खयानत है। बादशाह तो क्या, प्रत्येक व्यक्तिको स्वावलम्बी होना चाहिए। अपने कुटुम्बके भरण-पोषणके लिए स्वय कमाना चाहिए। जो बादशाह स्वावलम्बी न होगा, उसकी प्रजा भी अकर्मण्य हो जायेगी, अत मै राज-कोषसे एक पैसा भी नहीं ले सकता और मेरे हाथकी कमायी सीमित है। उससे तुम्ही बताओ, नौकरानी कैसे रखी जा सकती है?"

अनेकान्त, दिल्ली; मार्च १९३९ ई०

■

खलीफ़ा उमर

हजरत उमर ((द्वितीय खलीफा) वहुत सादगी-पसन्द थे। उन्होंने अपने वाहु-वलसे अरव, फिलस्तीन, रूम, वेतुल मुक़द्दस (शामका एक स्थान) आदिमे केवल दस वर्षमें ही छत्तीस-हजार क़िले और शहर फ़तह किये। यह विजयी खलीफा सादगीके नमूने थे। राज-कोपसे केवल अपने परिवार पालनके लिए वीस रुपया माहवार लेते थे। तगदस्ती इतनी रहती थी कि कोहनीके कपडोपर आपको चमडेके पेवन्द लगाने पडते थे, ताकि उस स्थानसे दोवारा न फट जायें। जूते भी स्वयं गाँठ लेते थे। सिरहाने तकियेकी एवज़ ईंटें लगाते थे। उनके वच्चे भी फटे-हाल रहते थे। इस-लिए हमजोली वालक अपने नये कपड़े दिखाकर उन्हें चिढाते थे। एक दिन आपके पुत्र अब्दुलरहमानने अपने लिए नये कपडे वनवानेके लिए रो-रोकर खलीफासे वहुत मिन्नतें की। खलीफाका हृदय पसीजा और उन्होंने अगले वेतनमें काट लेनेके लिए संकेत करते हुए दो रुपये पेशगी देनेको लिखा, किन्तु कोपाध्यक्ष खलीफ़ाका पक्का शिष्य था, अत उसने यह लिखकर दो रुपये पेशगी देनेसे इनकार कर दिया कि, "काश ! इस वीचमे आप इन्तकाल फरमा गये—स्वर्गस्थ हो गये—तो यह पेशगी लिये हुए रुपये किस खातेमें डाले जायेंगे ? मौतका कोई भरोसा नही, उसे आनेमें देर नहीं लगती और फिर आपका तो युद्धमय जीवन मृत्युसे खिलवाड करनेको सदैव प्रस्तुत रहता है। मै नही चाहता कि आप क़र्ज़-दार होकर जायें।"

हज़रत उमर इस परचेको पढकर रो पडे और कोपाध्यक्षकी इस दूरन्देशीकी वार-वार सराहना की। प्यारे पुत्रको अगले माहमे कपडे वनवा देनेका आश्वासन देते हुए गलेमे लगाया। इन्ही खलीफा साहवने

दारुण क्लेशमें महत्ता

धर्मान्ध और पितृ-द्रोही औरंगज़ेब अपने पूज्य पिता शाहजहाँको क़ैदमें डालकर बादशाह बन बैठा, तो उसने अपना मार्ग निष्कण्टक करनेके लिए शुजा और मुराद नामक अपने दो सगे भाइयोंको भी लगे हाथों यमलोक पहुँचा दिया। सल्तनतके असली उत्तराधिकारी बड़े भाई दाराको भी गिरफ्तार करके एक भद्दी और बूढ़ी हथिनीकी नंगी पीठपर बिठाकर देहलीके मुख्य-मुख्य बाज़ारोंमें-से उसको घुमाया गया। कहनेको जुलूस था, पर पैशाचिक ताण्डव था। जिन बाज़ारोंमें दारा युवराज और स्थानापन्न सम्राट्की हैसियतसे कभी निकलता था, वहीं वह पराजित और बन्दीके रूपमें अपनी प्रजाके सामने इस ज़िल्लतसे घुमाया जा रहा था कि ज़मीन फट जाती तो उसमें समा जाना वह अपना गौरव समझता।

दोपहरकी कड़ी धूप, हथिनीकी नंगी पीठ, क़ैदीका वेश, और फिर प्रजाके भारी समूहसे गुज़रना, दाराको सहस्र बिच्छुओंके डंकसे भी अधिक पीड़ा दे रहा था। वह रास्ते-भर नीची नज़र किये बैठा रहा, भूलकर भी पलक ऊपर न किये। एकाएक ज़ोरकी आवाज़ आयी,

"दारा, जब भी तू निकलता था, खैरात करता हुआ जाता था, आज तुझे क्या हो गया है? क्या तेरी उस सख़ावतसे हम महरूम रहेंगे?"

दाराने नेत्र उठाकर एक पागल फ़क़ीरको उक्त शब्द कहते हुए देखा। चट कन्धेपर पड़ा हुआ दुपट्टा उसकी ओर फेंक दिया और फिर नीची नज़र कर ली।

फकीर 'दारा ज़िन्दाबाद!' के नारे लगाता हुआ नाचने लगा। प्रजा दाराके इस साधुवादपर आँसू बहाने लगी। उसने उस आपत्तिके समय भी अपने दयालु और दानी स्वभावका परिचय दिया।

अनेकान्त, दिल्ली, मई १९२९ ई०

■

नादिरशाहका एक गुण

नादिरशाह एक साधन-हीन दरिद्र परिवारमें जन्म लेनेपर भी महान् विजेता हुआ है। वह आपत्तियोकी गोदमे पलकर दु:ख-दारिद्रयके हिण्डोलोमें झूलकर एक ऐसा विजेता हुआ है कि विजय उसके घोडोंके टापकी धूलके साथ-साथ चलती थी। यद्यपि वह स्वभावसे ही क्रूर, रक्तलोलुप मनुष्य था, फिर भी स्वावलम्बन उसमें एक ऐसा गुण था, जिसने उसे महान् सेनापतियोकी पक्तिमें बैठने योग्य बना दिया था। वह आत्म-विश्वासी था, वह दूसरोंका मुँह-देखा न होकर अपने बाहुओपर भरोसा रखता था। उसने दूसरोकी सहायतापर अपनी उन्नतिका ध्येय कभी नही बनाया, और न अपने जीवनकी बागडोर किसीको सौंपी। जिस कार्यको वह स्वयं करनेमें अपनेको असमर्थ पाता, उसको उसने कभी हाथ तक न लगाया।

देहली-विजय करनेपर विजित बाहशाह मुहम्मदशाह रँगीलेने उसे हाथीपर सवार कराके देहलीकी सैर करानी चाही। नादिरशाह इससे पहले कभी हाथीपर न बैठा था, उसने भारतमे ही आनेपर हाथी देखा था। हाथीके हौदेमें बैठनेपर नादिरशाहने आगेको ओर झुककर देखा तो हाथीकी गरदनपर महावत अकुश लिये बैठा था।

नादिरशाहने महावतसे कहा, "तू यहाँ क्यो बैठा है ? हाथीकी लगाम मुझे देकर नीचे उतर जा।"

महावतने गिडगिड़ाते हुए अर्ज किया, "हुजूर, हाथीके लगाम नही होती। बेअदबी मुआफ, इसको हम फीलवान ही चला सकते हैं।"

"जिसकी लगाम मेरे हाथमें नहीं, मैं उसपर नही बैठ सकता। मै

अपना जीवन दूसरोंके हाथोंमें देकर सस्ता मोल नहीं ले सकता।" यह कहकर नादिरशाह हाथीसे कूद पड़ा। जो दूसरोंके कन्धेपर बन्दूक रखकर चलानेके आदी हैं या जो दूसरोंके हाथकी कठपुतली बने रहते हैं नादिरशाह उनमें-से नहीं था। यही उसके जीवनका एक सबसे बड़ा गुण था।

अनेकान्त, दिल्ली, जून १९३९ ई०

■

शूर-वीर दारा

दारा मुसलमान होते हुए भी सर्वधर्म-समभावी था। उसके हृदयमें अन्य धर्मोंके प्रति भी सम्मान था। वह जितना ही दयालु और स्नेहशील था, उतना ही वीर प्रकृतिका भी था। शत्रुके हाथों भेड़ोंकी तरह मरना उसे पसन्द नहीं था। वह औरंगजेब-द्वारा बन्दी बनाये जानेपर कमरेमें बैठा हुआ चाकूसे सेब छील रहा था कि औरंगजेबकी ओरसे उसका वध करनेके लिए घातक आये। घातकोंको आते देख उसने प्राणभिक्षाके लिए गिड़गिड़ाना पाप समझा और चुपचाप आत्म-समर्पण करना कायरता जानी। तलवार न होनेपर भी सेब छीलनेवाले चाकूसे ही आत्म-रक्षाके लिए तैयार हो गया और अन्तमें आक्रमणको रोकनेका प्रयत्न करता हुआ, जवाँमर्दोंकी तरह मरकर वीरगतिको प्राप्त हुआ।

अनेकान्त, दिल्ली; मई १९३९ ई०

■

हृदयकी स्वच्छता

शैख इब्राहीम 'ज़ौक' उर्दूके एक बहुत प्रसिद्ध शाइर हुए हैं। वे मुगल-वंशके अन्तिम बादशाह बहादुरशाह 'ज़फर' के कविता-गुरु थे। आज भी भारतवर्षमे हज़ारो उर्दूके प्रसिद्ध कवि उनके शिष्य और प्रशिष्य हैं। उर्दू-शाइरीमें महाकवि 'ज़ौक़' अपना नाम अमर कर गये हैं। आप मुसलमान थे। एक बार अपने शागिर्दोंके साथ बैठे हुए आप बातचीत कर रहे थे कि उनके सिरपर चिडिया बार-बार आकर बैठने लगी। आपने तग आकर हँसीमें फरमाया,

"नादानोने मेरी पगडीको घोसला समझ लिया है।"

उस्तादकी इस बातसे सब खिलखिलाकर हँस पडे। वही एक नाबीना (नेत्रहीन) शिष्य भी बैठा हुआ था। उसे जब हँसीका कारण मालूम हुआ तो बोला, "उस्ताद, हमारे सिरपर तो चिडिया एक बार भी आकर नहीं बैठी।"

शागिर्दकी बात सुनते ही शैख 'ज़ौक़' बोले, "क्या वे जानती नही है कि तू काज़ी है, कलमा पढकर चट हलाल कर देगा।"

उस्तादकी बात सुनी तो हँसीका फव्वारा छूट पडा। नाबीना शागिर्द भी झेंपता हुआ हँस दिया।

शागिर्दोंने अर्ज़ किया, "उस्तादने क्या खूब फरमाया है। बेशक दिलमे दिलको राहत होती है। अपने दोस्त-दुश्मनकी पहचान जानवरोको भी होती है। साँप-बच्चेके छेडनेपर भी उसके साथ खेलता रहता है, मगर जवान इनसानको जरा-सी भूलपर भी काट खाता है। बुग्ज़ो-हसदसे पाक

(राग-द्वेपरहित) फक़ीरोके पास शेर और हिरन चौकडियाँ भरते हैं, उनके तलवे प्रेमसे चाटते है, मगर शिकारीको छिपे हुए देखकर भी भाग जाते हैं या मुक़ाविलेको तैयार हो जाते हैं। गाय क़साईके हाथ वेचे जाने-पर डकराती है। मगर किसी रहमदिलके छुडा लेनेपर एहसान-भरी नज़रो-से देखती है। इनसानका चेहरा मानिन्द आइने (दर्पण) के है। उसमें-खरे-खोटेका अक्स (प्रतिविम्व) हर वक्त झलकता रहता है।"

अनेकान्त, दिल्ली, अगस्त १९३९ ई०

■

दयालु वज़ीर

नादिरशाह कत्ले-आमका हुक्म देकर देहली—चाँदनी चौककी सुनेहरी मस्जिदमें तलवार वग़लमे रखकर क़ुरानकी तलावत (पाठ) करने वैठ गया। कत्लेआमसे दिल्ली-भरमे हा-हाकार मच गया। सडकें लाशोसे पट गयी। पानीकी नालियाँ लाल हो गयी, चप्पे-चप्पेपर इनसान सिसकते नज़र आने लगे। यह राक्षसी कृत्य एक वज़ीरसे न देखा गया। वह काँपते-काँपते सुनेहरी मस्जिदमे गया। मगर ज़ालिम खूँख्वार और ज़िद्दी नादिरशाहसे क़त्लेआमका हुक्म वापस लेनेकी प्रार्थना करना अपनी जानसे भी हाथ धो वैठना था। आखिर दयालु वज़ीरको एक युक्ति सूझ पड़ी। उसने अमीर खुसरोका यह शेर वादशाहसे अर्ज़ किया

कसे न मान्द कि दीगर वतेग़े नाज़ कुशी।
मगर कि ज़िन्दा कुनी खल्क़रा व वाज़ कुशी॥

"कोई आदमी नहीं वचा। सव तुम्हारी कहरकी निगाहके शिकार हो गये। निगाहे-नाज़की तलवारसे सवको मार डाला। अव निगाहके लुत्फसे लोगोको ज़िन्दा करो तो उन्हें फिर मारा जाये।" वादशाह इस शेरको सुनकर वहुत व्याकुल हुआ और उसने तत्काल कत्ले-आमका हुक्म वापस ले लिया।

१९५० ई०

■

दहेजमें पाँच-सौ उजाड़ गाँव

बादशाह महमूद ग़ज़नवी और उसका वज़ीर किसी जंगलसे गुज़र रहे थे कि एक वृक्षपर दो उल्लुओंको एक-दूसरेकी ओर मुँह किये हुए बैठे देखा। वज़ीरको छेडनेकी नीयतसे बादशाह बोला,

"वज़ीर, सुना है आप उल्लुओंकी बोली समझ लेते हैं?"

बादशाहके मज़ाक़का आशय था कि जानवरोंकी बोली जानवर ही समझते हैं, परन्तु वज़ीर भी अत्यन्त चतुर और हाजिर-जवाब था। उसने दस्तबस्ता अर्ज़ की, "क़िबलए-आलम, खुदाकी इनायतसे समझ तो लेता हूँ, मगर इस वक़्त जो ये नाहन्जार गुफ्तगू कर रहे हैं, उस तरफ तवज्जह न फ़रमायी जाये तो बेहतर है।" वज़ीरकी संजीदगी और लबोलहजेसे बादशाह-को यक़ीन हो गया कि वह जानवरोंकी बोली समझ लेता है और वह यह भूल गया कि उसने छेडनेकी नीयतसे जुमला कसा था। बादशाहने गुफ्तगू-का साराश बतानेके लिए जब बहुत ज़्यादा इसरार किया तो वज़ीर बोला,

"खुदावन्दा, जानकी अमान मिले तो गुफ़्तगूका निचोड़ बतानेकी गुस्ताखी करूँ।"

"जान बख्शी गयी।"

"जहाँपनाह, इसमें एक लडकीवाला और दूसरा लडकेवाला है। लडकीवालेने अपनी दोशीजाकी शादी उसके लडकेसे करनेकी ख्वाहिश जाहिर की तो उसने दहेजमें पाँच-सौ उजाड गांव तलब किये। "

"अच्छा फिर, कहे जाओ, डरो मत।"

"ग़रीबपरवर, बेअदब लडकीवालेने जवाब दिया, जानते नही आजकल किसका राज है? उजाड गाँवोंकी अब क्या कमी? आप रिश्ता

तो मजूर करें। पाँच-सौ गाँव नही, मैं एक हज़ार उजाड़ गाँव दहेजमें दूँगा।"

वज़ीर कहनेको तो कह गया, परन्तु वह इस तरह काँपने लगा, जैसे उसकी रूह फना हुई जा रही है। बादशाह वज़ीरके व्यग्यको समझ गया, वह आत्मग्लानि समेटते हुए बोला,

"वजीर, डरो नही, तुम्हारे-जैसे ही वज़ीरोकी हमें ज़रूरत है। हम हरगिज इन उल्लुओकी मुराद पूरी न होने देंगे। अब ज़िन्दगीका हर-लमहा गाँवोको उजाडनेमें नही, उन्हें आबाद करनेमें सर्फ होगा। काश मेरी आँखें पहले ही खुल गयी होती।"

जून १९५० ई०

■

गधेकी लात

मिर्ज़ा ग़ालिब उर्दूके अमर शाइर हुए है। उनके विरोधियोने कुछ असभ्यतापूर्ण पत्र भेजे तो वे पढकर चुप हो गये। शिष्योने जवाब देनेके लिए आग्रह किया तो फरमाया, "अगर कोई गधा तुम्हे लात मारे तो तुम भी उसे क्या लात मारोगे ?"

जून १९५० ई०

■

पुरुषार्थ

एक वार हज़रत मुहम्मदसे एक व्यक्तिने अपनी निर्धनताका उल्लेख करते हुए आर्थिक सहायताकी याचना की। हज़रत थोडी देर तो चुप रहे, फिर सोचकर फरमाया, "तुम्हारे पास क्या-क्या चीज मौजूद हैं?"

निर्धन · "मेरे पास एक वोरिया है, जिसके आधे हिस्सेको ओढता हूँ और आधेको विछाता हूँ, और एक प्याला है, जिससे पानी पीता हूँ।"

हज़रत : "जाओ, वह प्याला और वोरिया ले आओ।'

जव वह गरीव वोरिया और प्याला ले आया तो आपने उसे दो दिरममें नीलाम कर दिया और वे दोनो दिरम उसे देते हुए आदेश दिया,

"एक दिरमका अन्न घरमे डालो और दूसरेकी कुल्हाडी खरीदकर मेरे पास लाओ।"

जव वह कुल्हाडी खरीदकर आया तो फरमाया, "जाओ लकडियाँ काट-काटकर वेचो और पन्द्रह रोज़ तक मेरे पास न आओ।"

पन्द्रह रोजके वाद वह ग़रीव आया तो कमाये हुए दस दिरम हजरतके चरणोमें डालकर वडे अदवसे एक तरफ खडा हो गया। हजरतका मुँह प्रसन्नतासे खिल उठा और उसे दस दिरम लौटाते हुए इसी तरह पुरुषार्थ-पूर्वक जीवन व्यतीत करते रहनेको प्रोत्साहन दिया।

फ़रवरी १९५१ ई०

■

जिहाद और रोजगार

इस्लाममें जिहाद (धर्मके लिए विधर्मियोंसे युद्ध)को बहुत महत्त्व दिया गया है। उसके लिए तैयार रहना हर मुसलमानका प्रथम कर्तव्य बतलाया गया है, किन्तु रोजगारको जिहादपर भी तरजीह दी गयी है, क्योंकि भूखा रहकर मनुष्य कोई काम नही कर सकता।

एक बार हज़रत उमर मस्जिदमें तशरीफ लाये तो देखा एक आदमी जनताको जिहादके लिए उभार रहा है। हज़रत उसकी स्थितिसे भाँप गये कि यह आर्थिक सकटसे तग आकर जिहादके लिए मजबूर हुआ है। क्योंकि अर्थाभाव भी बहुत-से विद्रोह और अनैतिक कार्योंका जनक होता है। यदि देशमें अर्थसकट दूर न किया जाये, और भूखकी ज्वालाको यूँ ही सुलगते रहने दिया जाये तो, यह समूचे देशको भस्मसात् कर देती है।

अत हज़रतने उसका हाथ पकडकर जनतासे कहा, "आपमें-से क्या कोई आदमी इसे नौकरी दे सकता है ?"

एक व्यक्तिके स्वीकृति देनेपर आपने उसे उसके हवाले कर दिया।

थोड़े दिनके बाद हज़रतने उसे बुलवाया तो मालूम हुआ कि उसकी आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी हो गयी है। तब आपने फरमाया,

"अब तुम चाहे जिहाद करो, या इनसानी फराइज़ अदा करो, या अपने बच्चोंकी परवरिश करो, खुदमुख्तार हो।"

जिहादका नारा लगानेवालेने जिहादके एवज़ बारोज़गार रहना ही पसन्द किया।

आजीविका और परिश्रमपर इस्लाममें बहुत ज़ोर दिया गया है। एक हदीसका अनुवाद इस प्रकार है,

"अगर कयामत क़ायम हो जाये, उस हालतमें कि तुम ज़मीनमें खजूरका पौदा नम्ब करने (लगाने) के लिए झुके हुए हो, तो उस वक्त तक खडे न हो, जबतक वह पौदा नस्ब न कर लो।"

फरवरी १९५१ ई०

■

अपने दोष देखो

महात्मा ईसा बैठे हुए दीन-दुखी और पतित प्राणियोके उत्थानका उपाय सोच रहे थे कि उनके कुछ अनुयायी एक स्त्रीको पकडे हुए आये और बोले,

"प्रभो, इसने व्यभिचार-जैसा निन्द्य कर्म किया है। इसलिए पत्थर मार-मारकर इसके प्राण लेने चाहिए।"

महात्मा ईसाने अपने अनुयायियोका यह निर्णय सुना तो उनका दयालु हृदय भर आया, रुँधे कण्ठसे बोले, "आपमें-से जिसने यह निन्द्य कर्म मन, वचन, कायसे न किया हो, वही इसको पत्थर मारे।"

महात्मा ईसाका आदेश सुना तो मानो शरीरको लकवा मार गया। नेत्र ज़मीनमें गडेके गडे रह गये। उनमे एक भी ऐसा नही था, जिसके पर-स्त्रीके प्रति कुविचार कभी उत्पन्न न हुए हो। सारे अनुयायी उस स्त्रीको पकडे हुए मुँह लटकाये खडे रहे। तब महात्मा ईसाने करुणा-भरे स्वरमे कहा,

"मुमुक्षुओ, पतितो, दुराचारियो और कुमार्गरतोको प्रेमपूर्वक उनकी भूल सुझाओ, वे तुम्हारे दयाके पात्र हैं। औरोंके दोप देखनेसे पूर्व अपनी तरफ भी देख लेना चाहिए।"

अनेकान्त, दिल्ली, जुलाई १९३९ ई०

■

इच्छा-शक्ति

वास्तवमें वचपनके ही सस्कार भविष्यमें भाग्य-निर्माता होते हैं। होनहार वालकोंकी आभा उनके उदय होनेके पूर्व ही सूर्य-रेखाओंके समान फैलने लगती है। वे इसी अवस्थामें खेले हुए खेल, हँसी-हँसीमे किये गये सकल्प वडे होनेपर कार्यरूपमें परिणत कर दिखाते हैं।

एक वार वालक विलिंगटनसे किसीने पूछा, "यह टाइमपीस क्या कहती है?"

अवोध विलिंगटनने उत्तर दिया, "क्लॉक सेज दी टन, टन, टन एण्ड विलिंगटन वुड वी दी लार्ड ऑफ लण्डन (घडी कहती है, टन, टन, टन और लण्डनका लार्ड वनेगा विलिंगटन)।"

वालक विलिंगटनकी यह भविष्यवाणी आखिर सत्य निकली।

अनेकान्त, दिल्ली, १९३९ ई०

■

संकटमें धैर्य

दूर पहाडीपर बैठा हुआ नेपोलियन युद्ध-सचालन कर रहा था । उसके सिपाहियोके पाँव उखड चुके थे । उप-सेनापति चाहते थे कि नेपोलियन पीछे हटने अथवा युद्ध बन्द करनेके लिए सकेत दे-दे तो बेहतर । वरना आज पराजय अवश्यम्भावी है। यह बात सुझानेको एक उप-सेनापति नेपोलियनके पास गया और ध्यान अपनी ओर आकर्षित करनेके लिए उसने अपना सिगारकेस नेपोलियनके सामने पेश किया, जिसमे कई किस्मके सिगार थे । नेपोलियनने युद्धकी ओर दृष्टि किये हुए ही उनमें-से सर्वश्रेष्ठ सिगार उठा लिया । उप-सेनापतिकी ओर देखा तक भी नही । उप-सेनापति प्रसन्नमुख वहाँसे लौट आया । उसने सोचा,

"जो ऐसे सकटके समयमे भी इतना धैर्य रखता है कि उसका मस्तिष्क घटिया-बढियाके विवेकको भूल नही गया है, वह अवश्य विजयी होगा ।" और सचमुच नेपोलियनकी सेनाको उस युद्धमें विजय मिली ।

१९५० ई०

■

कर्त्तव्य-पालन

अमेरिकामे एक वार कुछ भद्र पुरुष लोकहितके कार्य सोचनेको एक कमरेमें एकत्र हुए। उस समय आँधी, वर्षा और भूकम्पने ऐसा दृश्य उपस्थित किया कि लोगोने उसे प्रलय समझा। उपस्थित समूहमें-से एकने कहा,

"अब हमे समस्त कार्य छोडकर ईश्वर-चिन्तन करते हुए मृत्युका आलिंगन करना चाहिए।"

यह बात सुनकर अध्यक्षने तुरन्त उत्तर दिया, "नही, हम जिस कार्यके लिए जमा हुए हैं, हमें वही करते रहना चाहिए। हमें अपना कर्त्तव्य-पालन करते रहना चाहिए। प्रलय आ रहा है, हमें मरना है, इस चिन्तामे नही पडना चाहिए। ईश्वर-चिन्तनसे ईश्वरके आदेश पालन करते हुए, उसकी सृष्टिकी सेवा करते हुए मरना कही अधिक श्रेष्ठ है। मृत्यु आ रही है, इस भयसे अकर्मण्य होकर ईश्वर-ईश्वर जपनेकी अपेक्षा श्वास रहे, तबतक कर्त्तव्य-पालनमें जुटे रहना ही हमारा कर्त्तव्य है।"

अप्रैल १९५० ई०

■

राज्य-वैभव और निःस्पृहता

सिकन्दर महान्‌के शासनकालमे एक 'डाओजिनीस' (Diogenese) निःस्पृही व्यक्ति हुआ है। न कोई परिग्रह, न कोई कामना, हर समय आनन्द-विभोर रहता था। सिकन्दरने जब उसकी ख्याति सुनी तो उसे भी मिलनेकी अभिलाषा हुई, किन्तु डाओजिनीसके स्वभावसे दरबारी परिचित थे। न वह किसी राजाके दरबारमे जाता था, न किसी रईसको खातिरमे लाता था। अपनी धुनमें मस्त रहता था। इसीलिए लोग उसे 'मिराकी' कहा करते थे। अत किसी दरबारीका यह साहस नही हुआ कि वह डाओजिनीस मिराकीको सिकन्दरके दरबारमें लानेका ज़िम्मा ले सके। आखिर सिकन्दर स्वयं ही उससे मिलने गया। डाओजिनीस आरामसे धूपमें लेटा हुआ था। सिकन्दरके पहुँचनेपर भी वह लेटा ही रहा। उस महान् सम्राट्‌की अभ्यर्थना करना तो एक तरफ़, उसने उसकी तरफ देखना भी उचित न समझा। सिकन्दरने रोबीले स्वरमें कहा,

"मैं सिकन्दर महान् हूँ।"

डाओजिनीसने लापरवाहीसे जवाब दिया, "और मुझे लोग डाओजिनीस मिराकी कहते हैं।"

सिकन्दर इस जवाबसे हतप्रभ-सा हो गया। वह नम्रतापूर्वक बोला, "क्या मैं आपकी कोई सेवा कर सकता हूँ।"

डाओजिनीसपर इस प्रलोभनका क्या खाक असर होता, वह उपेक्षा-भावसे बोला, "हाँ, इतना करो जरा मेरी धूप छोडकर परे खडे हो जाओ।"

सिकन्दर अपना-सा मुँह लेकर रह गया, और जाते हुए बोला, "अगर मैं सिकन्दर महान् न हुआ होता तो अवश्य ही डाओजिनीस मिराकी बनानेकी भगवान्‌से प्रार्थना करता।"

नि स्पृही और नि स्वार्थ व्यक्तिको संसारकी महान्‌से महान्‌ शक्ति भी नतमस्तक नही कर सकती ।

मार्च १९५१ ई०

■

सद्व्यवहार

सिकन्दरका प्रतिद्वन्द्वी पोरस रणक्षेत्रमें जीवित पकडे जानेपर सिकन्दरके सामने लाया गया । मिकन्दरने क्रुद्ध होकर कहा,

"वता, तेरे साथ मुझे कैसा व्यवहार करना चाहिए ?"

पोरसने सीना ताने हुए वीरोचित स्वरमें उत्तर दिया, "जैसा वादशाहको वादशाहके साथ करना चाहिए ।"

उत्तर सुनकर सिकन्दर क्षण-भरको निस्तव्ध रह गया और तत्काल पोरसको मुक्त कर दिया । जो पोरस तिल-तिल टुकडे कर देनेपर भी न झुकता, वही पोरस सिकन्दरके इस सद्व्यवहारसे उसका सखा वन गया ।

मार्च १९५० ई०

■

समवेदना

अमेरिकाके राष्ट्रपति मि० एब्राहाम लिंकन अपने अनेक लोकोत्तर गुणोके कारण काफी प्रसिद्ध हुए है। एक वार जाते हुए मार्गमे उन्होने कीचडमे एक वीमार सूअरको फँसे हुए देखा। देखकर भी वे रुके नही, आगे वढे चले गये, किन्तु थोडी दूर जानेके वाद वे पुन वापस लौटे और अपने हाथोंसे कीचडसे सूअरको वाहर निकाला। लोगोने हैरानीसे इसका सवव पूछा तो वे वोले,

"मै आवश्यक कार्यमे व्यस्त होनेके कारण इसे कीचडमे फँसा हुआ देखकर चला तो गया, पर मेरे हृदयमें एक वेदना-सी वनी रही, मैने उसी वेदनाको दूर करनेके लिए इसे निकाला है। दुखियोको देखकर हमारे हृदयमे जो टीस उठती है, उसीको मिटानेके लिए हम दुखियोका दु ख दूर करते हैं। इसमें उपकार और एहसानकी वात नही है।

मार्च १९५० ई०

■

डेपुटेशन

जिस यूनानने संसार-विजेता सिकन्दर महान्‌को जन्म दिया, जिस यूनानने सुकरात, अफलातून, अरस्तू और लुकमान-जैसे नर-रत्न उत्पन्न किये, और जो यूनान अपने अलौकिक चमत्कारसे संसारको चकाचौंध कर रहा था, वही यूनान भाग्यके फेरसे एक समय टर्कीके अधीन हो गया। यूनानके परतन्त्र होते ही उसकी समस्त खूबियाँ कपूरकी भाँति शनै-शनै विलीन होने लगीं, और विजेताओंके अवगुण गुडपर मक्खीके समान यूनानियोंमें चिमटने लगे। पराधीन यूनानी लोहेके कटघरेमें फँसे हुए शेर-की मानिन्द सब कुछ सहनेके आदी हो गये, किन्तु टर्की-सरकार-द्वारा एक नवीन कानून प्रचलित होते देख, उनकी आत्माएँ तड़प उठी, मानो कबूतरोंके कायर शरीरोंमें बाजकी शक्ति उत्पन्न हुई। इस अत्याचारके विरोधमें यूनानवालोंने आवाज़ उठायी और न्यायकी प्रार्थना करनेके लिए यूनानी प्रमुखोंका एक डेपुटेशन टर्की गया।

टर्की-सरकारकी ओरसे डेपुटेशनको शहरके बाहर एक विशाल भवनमें ठहराया गया। उसका यथोचित स्वागत किया गया और उसकी प्रार्थनापर नवीन कानून रद्द कर दिया गया। अभिलाषा पूर्ण हुई देखकर डेपुटेशनके सदस्योंकी बाँछें खिल गयीं। उन्होंने आत्म-गौरवका अनुभव किया और समझा कि हमसे भी कुछ मातृ-भूमिकी सेवा हो पायी है।

बातोंके सिलसिलेमें यूनानी प्रमुखने टर्की-सचिवसे कहा, "आपने हमारी अभिलाषा पूर्ण करके यूनानको चिर ऋणी बना लिया है। हम आपके इस सद्व्यवहारके लिए अत्यन्त कृतज्ञ हैं। यह सब कुछ तो हुआ,

परन्तु जब हम लोग यहाँ आये है, तब क्या हमें अन्दरसे शहर देखनेकी सुविधा नही दोजिएगा। हम देखते हैं कि हमारे चारो ओर एक गुप्त पहरा-सा लगा हुआ है, मानो हम आज्ञा प्राप्त किये बगैर यहांसे बाहर भी नही जा सकते।"

सचिव मुसकराकर बोला, "नही साहब, पहरा कैसा ? यह सब तो आपके आत्म-रक्षक है। आप यूनान जानेमें सर्वथा स्वतन्त्र है।"

डेपुटेशनका एक सदस्य चुटकी लेनेकी गरजसे बोला, "बेअदबी मुआफ, हम यूनान जानेमें तो स्वतन्त्र है, किन्तु टर्की देखनेमें शायद परतन्त्र हैं ?"

सचिवका खिला हुआ चेहरा गम्भीर हो गया, वह प्रसगको बदलनेकी नीयतसे इधर-उधर करने लगा, किन्तु यूनानी प्रमुखोंके पुन आग्रह करनेपर सकुचाते हुए बोला,

"क्षमा कीजिए, आप फिर कभी जब चाहें शहर देख सकते है, परन्तु इस समय नही, क्योंकि आप डेपुटेशन लेकर आये है। हमारे यहांके बालक, युवा, वृद्ध अभीतक यही समझते है कि अधिकार बाहु-बल और आत्म-बलसे प्राप्त होते हैं। आपको देखकर वह यह सीख जायेंगे कि अधिकार और न्याय भीख मांगनेसे भी मिल जाते हैं। तब वह भी अकर्मण्य और मोहताज हो जायेंगे।"

सचिवके उक्त शब्द थे या बिजली, यूनानके प्रमुख निश्चेष्ट-से रह गये।

१९३४ ई०

■

मोह-निद्रा

विश्व-विजेता सिकन्दर जब मृत्यु-शय्यापर पड़ा छटपटा रहा था, तब उसकी माँने रुँधे हुए कण्ठसे पूछा,

"मेरे लाडले लाल, अब मैं तुझे कहाँ पाऊँगी ?"

सिकन्दरने वृद्धी माँको सान्त्वना देनेकी नीयतसे कहा, "अम्मीजान, सत्रहवीवाले रोज मेरी कब्रपर आना, वहाँ मैं तुझे अवश्य मिलूँगा ।"

माँकी मोहब्बत, बड़ी मुश्किलसे सत्रह रोज़ कलेजा थामकर बैठी रही। आखिर सत्रहवीवाले दिन, रातके समय कब्रपर गयी। कुछ पाँवोंकी आहट पाकर बोली,

"कौन ? बेटा सिकन्दर ?"

आवाज आयी, "कौन-से सिकन्दरको तलाश करती है ?"

माँने कहा, "दुनियाके शाहंशाह, अपने लख्ते-जिगर सिकन्दरको, उनके सिवा दूसरा सिकन्दर और कौन हो सकता है ?"

अट्टहास हुआ और वह पथरीली राहोंको तय करता हुआ, भयानक जंगलोंको चीरता हुआ पर्वतोंसे टकराकर विलीन हो गया ।

कोनेसे किसीने कहा, "अरी बावरी, कैसा सिकन्दर ! किसका सिकन्दर ! कौन-सा सिकन्दर ! यहाँ तो चप्पे-चप्पेमें हजारों सिकन्दर मौजूद हैं !"

बुढ़ियाकी मोह-निद्रा भंग हुई ।

[illegible], दिल्ली, मार्च १९३९ ई०

वीरभोग्या वसुन्धरा

भारतका प्रथम ऐतिहासिक सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य—जिसने यूनानियोकी पराधीनतासे भारतको मुक्त किया था, जिसके वल-पराक्रमका लोहा सारे ससारने माना और जिसकी शासन-प्रणालीकी कीर्ति आज भी गूँज रही है, राज्य-वैभवमे उत्पन्न न होकर एक अत्यन्त साधारण स्थितिमे उत्पन्न हुआ था। गाँवकी गायें चराना और खेलना यही उसका दैनिक कार्य था, किन्तु वचपनमें ही उसके शुभ लक्षण प्रकट होने लग गये थे।

वह खेलनेमे स्वयं राजा वनता, किसीको मन्त्री, किसीको कोतवाल, किसीको चोर वगैरह वनाता। चोरोको दण्ड और सदाचारियोको इनाम देता। जरा भी उसकी आज्ञा-पालनमें हील-हुज्जत की जाती तो वह अधिकारपूर्ण शव्दोमें कहता,

"यह राजा चन्द्रगुप्तकी आज्ञा है इसका पालन होना ही चाहिए।"

उसका यह आत्म-विश्वास, हौसला और महत्त्वाकाक्षा देखकर भिक्षु-वेशमें खडा हुआ चाणक्य वडा विस्मित हुआ। उसने कौतुकवश वालक चन्द्रगुप्तके पास जाकर कहा, "राजन्, कुछ हमें भी दान दीजिए।"

वालक चन्द्रगुप्त चाणक्यकी वातसे न झिझका, न शर्माया। उसने राजाओकी ही तरह आदेश दिया, "सामने जो गायें चर रही है, उनमे-से जो भी तुझे पसन्द हो, ले जा सकता है।"

चाणक्य मुसकराकर वोला, "महाराजाधिराज, यह गायें तो गाँव-वालोकी है, वे मुझे क्यो ले जाने देंगे?"

चन्द्रगुप्तने जरा भृकुटी चढाकर कहा, "भोले विप्र, क्या तुम नही जानते 'वीरभोग्या वसुन्धरा।' किसकी मजाल है जो मेरे आदेशकी अव-हेलना कर सके?"

वालक चन्द्रगुप्तका यह सकल्प सही निकला और वह अपनी युवा-वस्थामे ही साधन-हीन होते हुए भी सचमुच सम्राट् वन वैठा।

जुलाई १९३२ ई०

माँके संस्कार

सिद्धराज चावडा काठियावाड़का एक अत्यन्त प्रसिद्ध सदाचारी वीर पुरुप हुआ है। किसी मनचले राजाने अपने पुत्रको भी इसी ढगका बना देनेके लिए अपने राज्य-पण्डितको आदेश दिया। आदेश सुनकर राज्य-पण्डित बोला, "अन्नदाता, आपका पुत्र शिक्षा-द्वारा सिद्धराजके समान बन तो सकता है, किन्तु उसकी मातामें सिद्धराजकी जननी-जैसे गुण भी विद्यमान हैं क्या ?"

राजाके पूछनेपर कहा, "जब सिद्धराज अबोध बालक था, तब वह एक रोज़ पालनेमें सो रहा था, उसकी माता उसे झुला रही थी कि अकस्मात् सिद्धराजके पिता बनराज आ गये और वह रानीसे हँसी करने लगे। रानीने कहा, "आप पर-पुरुषके सामने मेरी लाज गँवाते हैं, यह क्या ठीक है ?"

राजाके पूछनेपर रानीने बालककी ओर सकेत कर दिया। बनराजने इसे कुछ भी न समझा और वह और भी छेड-छाड करने लगे। भाग्यकी बात सिद्धराजने, जिसकी आयु तब केवल दो माह की थी, मक्खी वगैरहके बैठनेसे मुँह फेर लिया। रानी चौंकी, "हे भगवान्, यह सब कुछ बालक-ने देख लिया और उसने मारे आत्मग्लानिके विष खा लिया।" राज्य-पण्डितसे उक्त घटना सुनकर मनचले राजाकी—अपने पुत्रको भी सिद्धराज जैसा बनानेकी—अभिलाषा विलीन हो गयी।

१९२८ ई०

वीर महिला

आमेरके विख्यात महाराजा जयसिंहने कोटेको राजकुमारीके साथ विवाह किया था। उस कोटेकी राजबालाका स्वभाव, उसका आचरण और वेश अत्यन्त सरल और आडम्बरहीन था, किन्तु आमेरके अन्त पुरमे बहुमूल्य आभूषण एव रग-बिरगे कीमती वस्त्र पहननेका प्रचलन था। कोटेकी राजकुमारी विलासप्रिय न होकर वीर-स्वभावकी थी, वह सदैव स्वच्छ और सादगीसे रहती थी। एक बार महाराज जयसिंहने कहा, "कोटेकी राज-रानियोकी अपेक्षा हमारे यहाँकी नीच जातिकी स्त्रियाँ भी अच्छे सुन्दर रमणीक वस्त्र और आभूषण पहनती है।"

कुछ देरके पश्चात् एक काँचका टुकडा लेकर रानीके पहने हुए वस्त्रोको काटने लगे। कोटेकी राजकुमारीने यह कृत्य अपनी आत्म-प्रतिष्ठा और स्वाभिमानका घातक समझा। चट पासमें रखी हुई तलवार उठा ली और गरजकर बोली, "मैंने जिस वंशमे जन्म लिया है, वह राजवंश कदापि इस प्रकारकी घृणा और उपहासके योग्य नहीं है। आप इस बातको स्मरण रखिए कि स्त्री-पुरुषोंमें पारस्परिक प्रेम, सद्भाव, सम्मान होनेसे दाम्पत्य-सुख ही नही, अपितु धर्मकी भी रक्षा होती है।" फिर उस वोरबालाने कहा, "महाराज, यदि विलासिता चाहते हो, तो वेश्याओके यहाँ जाओ, मुगलोकी चौखटें चूमो, मैं वीरबाला हूँ, वीर-वेश पहनना जानती हूँ, रणका साज सजाना जानती हूँ और जानती हूँ, तलवारके हाथ। आओ सामने, तब आप भली प्रकार समझेंगे कि आमेरके राजकुमार काँचके टुकडोको चलानेमें इतने चतुर नही है, जितनी कोटेकी राजकुमारी तलवारके हाथ चलानेमें निपुण है।"

क्षत्राणीका आदर्श

शाहजहांके दारा, शुजा, औरंगज़ेब और मुराद—ये चार लडके और जहांनारा और रोशनारा दो लडकियां थी। शाहजहांके बीमार पडते ही शोणित-लोलुप क्षुधित व्याघ्रकी तरह चारो भाई आपसमे कट मरे। वह शाहजहांके अन्तिम काल तक मयूर-सिंहासनके लोभको न दबा सके।

शाहजहांके अनुरोध पर मारवाड-केसरी राजा यशवन्तसिंह तीन सहस्र राजपूत-सेना लेकर पितृद्रोही औरंगजेबका आक्रमण रोकनेके लिए उज्जैन जा पहुँचे, किन्तु कूटनीतिज्ञ औरंगज़ेबके षड्यन्त्रके सामने उनकी वीरता काम न आयी। अन्तमें उन्हे रणक्षेत्रका परित्याग करना पडा।

राजा यशवन्तसिंहका शिशोदिया राजकुमारीके गर्भसे जन्म हुआ था। और शिशोदिया-कुलकी ही एक वीरबालाके साथ विवाह हुआ था। पवित्र शिशोदिया-कुलमें विवाह कर पानेपर राजपूत राजा अपनेको पवित्र और कृतार्थ समझते थे। राजा यशवन्तसिंहकी स्त्री अपने उच्चकुलके अनुरूप ऊँचे गुणो और लक्षणोसे विभूषित थी। जब उसने उज्जैनके युद्धका वृत्तान्त सुना कि उसके पतिकी प्राय समस्त सेना नष्ट हो गयी है और वह शत्रुको पराजित न कर रण-भूमिसे चला आया। वह मारे आत्मग्लानिके रो पडी और उसी आवेशमे सोचने लगी,

"न जाने मेरे कौन-से पापकर्मका उदय है, जो मुझे ऐसा क्षत्रियकुल-कलंकी पति मिला। अच्छा होता जो मै विवाही न जाती, कायर-पत्नी तो न कहलाती। विषपान कर लूँगी, जीते-जो आगमें कूदकर प्राण दे दूँगी, किन्तु कायर-पत्नी न कहलाऊँगी। जब कि मेरे पूर्वज, शरीरमे

रक्तकी एक बूँद रहने तक, शत्रुओंका मान-मर्दन करते रहे हैं, तब मेरा पति शत्रुके भयसे भागकर आवे और मैं उसे छिपा लूँ ? वीर-दुहिता होकर कायर-पत्नी कहलाऊँ ? लोग क्या कहेंगे ? सहेलियाँ ताना मारेंगी और पिताजी तो मेरा मुँह देखना भी पाप समझेंगे। ओह, हृदयमें कैसी-कैसी उमंगें थीं। विजयी होकर आयेंगे, आरती उतारूँगी, उनकी चरण-रज लेकर सुहागकी चूनरीमें बाँधूँगी, तलवारका रक्त लेकर मेंहदी रचाऊँगी, उनके जख्मोंको अपने हाथसे धोऊँगी, उनके शत्रु-संहार-रण-कौशलको सुनकर मैं आपेमें न रहूँगी, मारे गर्वके मेरी छाती फूल उठेगी। दोनों मिलकर मातृ-भूमिकी वन्दना करेंगे, किन्तु यह सब स्वप्न था, जो अँधेरी रात्रिके सन्नाटेमें देखा गया था। आह ! युद्ध-भूमिमें वीर-गतिको भी प्राप्त न हुए, नहीं तो साथमें सती होकर जीवन सुधार लेती।"

रोते-रोते शिशोदिया राजकुमारीके मुखमण्डलने भयावनी मूर्त्ति धारण कर ली। वह सर्पिणीके समान फुँफकार कर बूढ़े द्वारपालसे बोली, "मैं कायर पतिका मुँह देखना नहीं चाहती। इस वीर-प्रसवा भूमिमें रणसे भयभीत मनुष्यको आनेका अधिकार नहीं, अतएव मेरी आज्ञासे दुर्गके दरवाज़े बन्द कर दो।"

द्वारपाल थर-थर काँपने लगा, उसकी बुद्धिको काठ मार गया। वह गिडगिडाकर बोला, "महारानीजीका सुहाग अटल रहे। मैं आपकी आज्ञा-पालनमें असमर्थ हूँ, वह हमारे महाराजा हैं, जीवनदाता हैं।"

रानी "नहीं ! अब वह जीवनदाता नहीं। जो प्राणोंके भयसे भाग-कर स्त्रीके आँचलमें छिपे, वह जीवनदाता नहीं। जीवनदाता वह है, जो सर्वसाधारणके हितार्थ अपना जीवनदान करनेको सदा प्रस्तुत रहे।"

द्वार० : "महारानीजी, वह हमारे अन्नदाता है।"

रानी . "असम्भव ! जो दासत्व-वृत्ति स्वीकार कर चुका है, परतन्त्र-ताके बन्धनमें जकड़ा जा चुका है, जो दूसरेकी दी हुई सहायतासे अपने-को सुखी समझता है, वह अन्नदाता नहीं।"

द्वार० · "वह परतन्त्र नही, अपितु यवन बादशाहके दाहिने हाथ हैं।"

रानी "वह भी किसलिए ? अपने देशवासियोको नीचा दिखानेके लिए। मायावी यवन बादशाह काँटेसे काँटा निकालना चाहता है।"

द्वार० "अर्थात् ?"

रानी "यही कि वह कुछ राजपूतोको अपने पक्षमें करके भारतके समस्त राजपूतोको शिखण्डी बनाना चाहता है। भारतके हाथो भारत-सन्तानका पतन चाहता है। भोले द्वारपाल, याद रखो, स्वामी सेवकका चाहे जितना आदर क्यो न करे, चाहे मणिमुक्ताओ और सोनेसे उसको क्यो न सजा दे, परन्तु जो दास हैं, वह तो सदा दास ही रहेगा।"

द्वार० "महारानीजी, आपका कथन सत्य है, किन्तु पति फिर भी पति है, उसका अपमान करनेसे क्या लाभ ? क्षमा कोजिए, मै आपको कुछ सीख नही दे रहा हूँ, परन्तु फिर भी पुराना सेवक होनेका अभिमान रखते हुए, मैं यह प्रार्थना करता हूँ, कि आप इस समय तो उन्हें अन्त पुरमें बुलाकर सान्त्वना दें, पश्चात् क्षत्रियोचित कर्त्तव्यका ज्ञान करानेके लिए कुछ उतार-चढावकी बातें भी करें! इसके विपरीत करनेसे जग-हँसाई होगी और प्रजा भी उद्दण्ड हो जायेगी।"

द्वारपालके समय-विरुद्ध व्याख्यानको सुनकर शिशोदिया-कुलोत्पन्न वीरागना झल्ला उठी, किन्तु द्वारपालकी स्वामि-भक्तिने क्रोधके पारेको आगे न बढने दिया, वह सहमकर बोली,

"तुझसे अधिक मेरे हृदयमें उनका मान है। वह मेरे ईश्वर हैं, मेरे देवता हैं, मै उनकी पुजारिन हूँ परन्तु मालूम होता है वृद्धावस्थामें तेरी बुद्धिपर पाला पड गया है, वीरताको जग लग गया है, नही तो ऐसी बातें नही करता। क्या तू नहीं जानता कि मारवाड वीर-प्रसवा भूमि है ? यहाँके निवासी युद्धसे भागना नही जानते, वह जानते है युद्धमें कटकर मरना। जब मारवाडी वीरोको मालूम होगा कि यहाँ युद्धसे भागे हुए कायरको भी शरण मिल सकती है, उसका भी आदर होता है, तब वह

भी यह कुटेव सीख जायेंगे। अतएव मैं नहीं चाहता कि मेरे देशवासी कायर बनें।"

वृद्ध द्वारपाल अवाक् रह गया। वह किंकर्त्तव्यविमूढकी नाईं पृथ्वी कुरेदने लगा।

शिशोदिया राजकुमारीकी सास भी छिपी हुई यह सब कुछ सुन रही थी। पुत्रवधूके वीरोचित शब्दोंसे यशवन्तकी जननीका रक्त खौल उठा। यह वास्तवमें उसका अपमान था। वह दुःखमें अधीर हो उठी। पुत्रको पुनः रणक्षेत्रमें कैसे भेजूँ—वह यही सोचने लगी। अन्तमें उसने क्रोधको दबाकर गरम लोहेको ठण्डे लोहेसे काटा। यशवन्तसिंहको बुलाकर सदाकी भाँति प्यार करके भोजन जिमाने लगी। सुवर्णके बजाय लोहेके वर्त्तन देखकर यशवन्तसिंह क्रुद्ध हो गये। राज-माता भी दासियोंपर कृत्रिम क्रुद्ध होकर बोली, "देखती नहीं हो, मेरा बेटा तो पूर्व ही लोहेसे डरकर यहाँ भाग आया है, फिर लोहा ही उसके सामने ला रखा!" माताके इस व्यंग्यसे यशवन्तसिंह कट से गये। राजमाता अपने उपदेशका अंकुर जमने योग्य भूमि देखकर बोली,

'यशवन्त, वास्तवमें तू मेरा पुत्र नहीं। तुझे बेटा कहते हुए मैं मारे आत्म-ग्लानिके गड़ी जा रही हूँ। यदि तू मेरा पुत्र होता तो शत्रुको पराजित किये बिना न आता। तुझमें मान नहीं, साहस नहीं, अभिमान नहीं, तू कुल-कलंकी है, कायर है, शिखण्डी है, तूने राजपूत कुलमें जन्म लेकर उसके उज्ज्वल मुखमें कलंक लगा दिया। बहूका आत्माभिमान देखकर मेरी छाती गर्वसे फूल उठी है, किन्तु साथ ही दारुण अपमानके मारे मैं मरी जा रही हूँ। एक तो वह वीर-प्रसवा क्षत्राणी, जिसने ऐसी वीरबालाको जन्म दिया, और एक मैं, जिसने तेरे-जैसे कुलांगारको उत्पन्न किया! धिक्कार है मेरे पुत्र प्रसव करनेको! अच्छा होता जो मैं वन्ध्या होती, अथवा तेरी जगह ईंट-पत्थर प्रसव करती जो मकानोंके तो काम

जाते। अस्तु, जो होना था सो हो चुका, किन्तु ठहर, मैं तेरा जीवन समाप्त कर देना चाहती हूँ। वह कायर-पत्नी नही कहलाना चाहती, तो मैं भी कायर-पुत्रको जीवित रखना नही चाहती।"

क्रोधके आवेशमें वीर-माता कटार निकालकर मारना ही चाहती थी, कि यशवन्तसिंह रोकर पैरोपर गिर पडे। फिर तलवार निकालकर प्रतिज्ञा की, "माता, जबतक मैं जीवित रहूँगा, युद्धमें रहूँगा, युद्धसे कभी विमुख नही होऊँगा। जबतक शत्रुओंका नाश नही कर लूँगा, कभी सुखसे न बैठूँगा।"

जून १९२८ ई०

■

सेवकका कर्त्तव्य

मेवाड-केसरी महाराणा प्रताप मौतके शिकजेमें जकडे हुए थे। वह लोहेके कटघरेमें फँसे हुए शेरकी भाँति रोग-शय्यापर पडे छटपटा रहे थे। अस्फुट वेदनाके चिह्न उनके मुखसे भली भाँति प्रकट हो रहे थे। आँखोके कोनेमें छिपे हुए आँसू मौन-वेदनाका सन्देश दे रहे थे। वीर-चूडा-मणि महाराणा प्रतापने पूर्वजोको बनायी हुई गगनचुम्बी अट्टालिकाओको छोडकर पीछोला सरोवरके किनारेपर कई एक झोपडियाँ बनवायी थी, उन्ही कुटियोमे अपने समस्त सरदारोके साथ राणाजी अपना राजर्षि-जीवन व्यतीत करते थे। आज अन्तकालके समय भी उन्हीमे-से एक साधा-रण कुटीमें रुग्ण-शय्यापर लेटे हुए क्रूरकालकी बाट जोह रहे थे। इतनेमें ही प्रचण्ड वेगसे शरीरको कम्पायमान करती हुई एक साँस राणाजीके मुँहसे निकली। समीपमें बैठे हुए उनके जीवनके सखा, मेवाडके सामन्त और सरदार, उनकी इस मर्मान्तिक वेदनाको देखकर काँप उठे। शालुम्ब्रा सरदार कातर होकर रुँधे हुए स्वरमें बोले, अन्नदाता, इस अन्तिम समयमें आपको ऐसी क्या चिन्ता है ? किस दारुण दु.खके कारण आप छटपटा रहे है ? आपका यह दीर्घ नि श्वास हमारे हृदयमे तीरकी तरह लगा है। यदि कोई अभिलापा है, तो कृपा करके कहिए, हम सब आपकी इस अन्तिम इच्छाको जीवनके अन्त समय तक अवश्य पूर्ण करेंगे।''

मेवाडका वह टिमटिमाता हुआ दीपक शालुम्ब्रा सरदारके आश्वासन-रूपी तेलको पाकर फिर प्रज्वलित हो उठा। महाराणा प्रताप अपने शरीरकी पूर्ण शक्ति लगाकर बडे कष्टसे बोले, "प्यारे सखा, पूछते हो मुझसे, क्या कष्ट है ? मेरे भोले सरदार, इतने भोलेपनका प्रश्न! मेरी मातृ-भूमि चित्तौड जो मेरे पूर्वजोकी क्रीडास्थली थी, जिसके लिए मुसक-

राने हुए उन्होंने अपने प्राणोकी आहुतियाँ दी, उसे मै यवनोके चंगुलसे नहीं छुडा सका, मै अपने प्यारे देशवासियोको चित्तौडकी पवित्र भूमिपर स्वतन्त्र विचरते हुए न देख सका, यह क्या कम कष्ट है? यही दारुण वेदना मेरे प्राणोको रोके हुए है।"

शालुम्ब्रा सरदार मस्तक झुकाकर बोले, "श्रीमान्, आपकी यह पवित्र अभिलाषा अवश्य पूर्ण होगी। आप किसी प्रकारकी चिन्ता न करके एकाग्रचित्तसे भगवान्‌का स्मरण करिए।"

शालुम्ब्रा सरदारके वाक्य पूर्ण होने तक महाराणा प्रतापका विषाद-पूर्ण पीतमुख गम्भीर हो गया, वह बीचमें ही बात काटकर बोले,

"ओह शालुम्ब्रा सरदार, मुझे वाक्-पटुतामें न फँसाओ। मुझे इस समय धर्मोपदेशकी आवश्यकता नही। देश परतन्त्र रहे और मैं इस अन्त समयमें भगवान्‌का स्मरण करके परलोक सुधारूँ। छि! कैसी वाग्विडम्बना है? मेरे मित्र, याद रखो, जो इस लोकमें परतन्त्र हैं, वह परलोकमें भी परतन्त्र रहेंगे। जो व्यक्ति अपने देशवासियोको दु ख-सागरमें विलखते देखकर अकेला मोक्ष पाना चाहता है, वह न तो मोक्ष पाता है, न पानेके योग्य है। त्रिशकुकी तरह उसको बीचमें ही लटकना पडता है। यदि मेरे नरकमें रहनेसे भी मेरा देश स्वतन्त्र हो सकता है तो मैं नरककी दुस्सह वेदना सहन करनेको प्रस्तुत हूँ। बोलो, बोलो, क्या कहते हो? शपथ करो कि इन विदेशियोका विध्वस करके मातृ-भूमिको स्वतन्त्र कर देंगे।

सामन्त और सरदार व्यग्र हो उठे, राणाजीकी यह अभिलाषा क्योकर पूर्ण होगी? जीवन-भर लडते हुए भी जिसे अपना न कर सके, उसे अब कैसे स्वतन्त्र कर सकेंगे? तब भी सन्तोषके लिए आश्वासन देते हुए बोले, "भारत-सम्राट्, आपकी यह अभिलाषा वीरोचित है। आप विश्वास रखिए, श्री बापजीराव (युवराज अमरसिंह) आपकी इस अन्तिम कामनाको श्री एकलिंगजीकी कृपासे अवश्य पूर्ण करेंगे।"

वीर-शिरोमणि महाराणा प्रताप घायल सिंहकी तरह दहाडकर बोले, "अमर चित्तौडको तो क्या स्वतन्त्र करेगा, वह रहे-सहे मेवाडके गौरवको भी खो बैठेगा। उसके आगे मेवाडकी पवित्र भूमि यवनोके पाद-प्रहारसे कुचली जायेगी।"

समस्त सरदार एक स्वरसे बोल उठे "अन्नदाता! ऐसा कभी न होगा।"

जिस प्रकार दीप-निर्वाण होनेके पूर्व एक बार प्रज्वलित हो उठता है उसी प्रकार राणाजी शक्ति न रखते हुए भी आवेशमें कहने लगे, "मैं कहता हूँ, ऐसा अवश्य होगा। युवराज अमर सिंह हमारे पितृ-पुरुषोंके गौरवकी रक्षा नही कर सकेगा। वह यवनोसे युद्ध न करके मेवाडकी कीर्ति-रूपी स्वच्छ चादरपर विलासिताका स्याह धब्बा लगा देगा "

कहते-कहते उनका गला रुँध गया। सरदारके दो घूँट पानी पिलानेके पश्चात् क्षीण स्वरसे बोले, "एक समय कुमार अमरसिंह उस नीची कुटीमें प्रवेश करनेके समय सिरकी पगडी उतारना भूल गया था। इस कारण सिरकी पगडी द्वारके निकले हुए बाँसमे लगकर नीचे गिर पडी। अमरसिंहने इस कुटीके महत्त्वको कुछ भी न समझा और दूसरे दिन मुझसे कहा कि यहाँपर ऊँचे-ऊँचे महल बनवा दीजिए।"

युवराज अमरसिंहके बाल्यकालकी गाथा कहते हुए राणाजीका पीत-मुख और भी गम्भीर हो गया। उन्होंने फिर एक लम्बी साँस ली और बोले, "इन कुटियोंके बदले यहाँ रमणीय महल बनेंगे। मेवाडकी दुरवस्था भूलकर अमर यहाँपर अनेक प्रकारके भोग-विलास करेगा। उसमे इस कठोर व्रतका पालन नहीं होगा। हा! अमरसिंहके विलासी होनेपर वह गौरव और मातृभूमिकी वह स्वाधीनता भी जाती रहेगी, जिसके लिए मैंने बराबर पचीस वर्ष तक वन-वन और पर्वत-पर्वतपर घूमकर वनवासका कठोर व्रत धारण किया। जिसको अचल रखनेके लिए सब भाँतिकी सुख-सम्पत्तिको छोडा। शोक है कि अमरसिंहसे इस गौरवकी रक्षा न होगी। वह

अपने सुखके लिए उस स्वाधीनताके गौरवको छोड देगा और तुम लोग, उसके अनर्थकारी उदाहरणका अनुसरण करके मेवाडकी पवित्र और धवल कीर्तिमें कलंक लगा दोगे।"

महाराणाका वाक्य पूरा होते ही समस्त सरदार मिलकर बोले, "क्षमा अन्नदाता, महाराज, हम लोग बप्पारावलके पवित्र सिंहासनकी शपथ खाकर कहते हैं कि जबतक हममें-से एक भी जीवित रहेगा, उस दिन तक कोई तुरक मेवाडकी भूमिपर अधिकार नही पा सकता। जबतक मेवाड भूमिकी स्वाधीनता पूर्ण भावसे प्राप्त न कर लेंगे, तबतक इन्ही कुटियोंमें हम लोग रहेंगे।"

सरदारोकी वीरोचित शपथ सुनकर हिन्दू-कुल-भूषण वीर-चूडामणि राणा प्रतापके नयन-झरोखोंसे आनन्दाश्रु झलकने लगे। वह नेत्र विस्फारित करते हुए "भारत माताकी जय", "मेवाड भूमिकी जय" इतना ही कह पाये थे, कि उनकी आत्मा स्वर्गासीन हो गयी। मेवाडवासी दहाड मारकर रोने लगे, मेवाड अनाथ हो गया।

वीर-केसरी प्रतापके स्वर्गासीन होनेपर युवराज अमरसिंहको राघव-वंशीय सूर्यकुल-भूषण बप्पारावलके पवित्र सिंहासनपर बैठनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। महाराणा अमरसिंहमें असाधारण गुण थे। उन्होने अपने शासन-कालमें मेवाडमें कई आदर्श सुधार किये, किन्तु, स्वेच्छाचारिता और विलासिता दो ऐसे अवगुण हैं, जो मनुष्यके अन्य उत्तम गुणोपर भी परदा डाल देते हैं। दुर्भाग्यसे राणा अमरसिंह भी प्लेग, हैज़ेके समान उडकर लगनेवाली विलासितारूपी बीमारीसे न बच सके। वे दिन-रात आमोद-प्रमोदमे रहने लगे। उनके पूर्वज क्या थे, इस समय मातृ-भूमि कैसे संकट-में है, भारतीय आर्य-ललनाओकी कैसी दुरवस्था है, इस बातकी न तो उन्हें कुछ खबर ही थी, और न कुछ चिन्ता। वे दिन-रात महलोमें पडे हुए चापलूसोंके साथ अनेक क्रीडाएँ किया करते। जो झूठ बोलनेमें,

वात वनानेमें, मायाचारी करनेमें, जितना सिद्धहस्त होता, वह उतना ही प्रेम-पात्र बन सकता था। सच्चे देश-भक्त, वीर और आनपर मर मिटनेवाले उनके यहाँ घमण्डी और पागल समझे जाने लगे। ससारमें क्या हो रहा है, इसकी उनको तनिक भी परवाह नही थी। ऐसे ही दुर्दिनोंमें उचित अवसर जान जहाँगीरने मेवाडपर आक्रमण कर दिया। मातृभूमिपर सकट आया देख, कुछ वीर-सैनिकोका हृदय धक-धक करने लगा। उनके नेत्रोंके सामने भविष्यमें आनेवाले संकट चल-चित्रके समान नाचने लगे। ऐसे सकटके समय भी राणाजी विलासितामें डूबे हुए, अपने चापलूस मित्रोके साथ आमोद-प्रमोदमें मस्त है, मेवाड-रक्षक आज भी कायरोंकी भाँति जनानेमें घुसे हुए हैं। इन्ही वातोको देखकर वह मुट्ठी-भर राजपूत विकल हो उठे। उनकी हृदय-तन्त्री कर्त्तव्य-पालन करनेके लिए वार-वार प्रेरित करने लगी। शालुम्ब्रा सरदार वीर चुण्डावतको राणा प्रतापकी कही हुई वात इस समय बिलकुल जँचने लगी। इसी समय उन्हें अकस्मात् प्रतापके सामने की हुई प्रतिज्ञा याद हो आयी। वह मेवाडके वीर सैनिकोकी एक टोली वनाकर राणाजीके महलोमें जा पहुँचे। चुण्डावत सरदारकी उग्र मूर्ति देखकर राणाजी सहम गये, तव भी वे हँसकर वोले, "कहिए शालुम्ब्रा सरदार! इस समय कैसे पधारे?" राणा अमरसिंहके इस व्यग्य-भरे प्रश्नसे चुण्डावत सरदार कुछ कट-से गये, वह कडककर वोले,

"देशपर आपत्तिकी घनघोर घटा छायी हुई है, यवनेश अपनी असख्य सेना लेकर मेवाडपर चढ आया है, फिर भी आप पूछते हैं कि इस समय कैसे पधारे? विजेताओंके अत्याचारसे लाखो युवतियाँ विधवा हो जायेंगी, उनका वलपूर्वक शील नष्ट किया जायेगा। हमारे धार्मिक मन्दिर-पृथ्वीमें समतल कर दिये जायेंगे। मेवाडकी कीर्ति लुप्त हो जायेगी। सव कुछ जानते हुए भी मेवाड-नरेश, यह अनभिज्ञता कैसी?"

चुण्डावत सरदारके उक्त मर्मान्तक वाक्य राणाजीके हृदयमें लगे तो,

किन्तु व्यर्थ ! उनकी काम वासनाने, विद्वत्ता, वीरता, स्वाभिमान, मनुष्यता समीपर परदा डाल रखा था। वे सरदारको टालनेके अभिप्रायसे बोले, "तब मैं क्या करूँ ?"

"आप क्या करें ! राणा संग्रामसिंहने क्या किया था ? राणा लक्ष्मण-सिंहके बारह पुत्रोंने क्या किया था ? वीर जयमल और पत्तेने क्या किया था ? और आपके यशस्वी पिताने क्या किया था ? जो उन्होंने किया, वही आप कीजिए। जिस पथका अवलम्बन उन्होंने किया, उसीका अनु-सरण आप भी कीजिए।"

"मैं व्यर्थका रक्तपात करके अपने हाथोंको कलंकित नहीं करना चाहता।"

"अच्छा, आप रक्त-पात न कीजिए, परन्तु अपना ही रक्त बहाइए।"

"इसका तात्पर्य ?"

"यही कि आपकी विलासिता और अकर्मण्यतासे जो मेवाड़वासी अनुत्साही हो गये हैं—उनके हृदयकी वीरता शुष्क हो गयी है—वह आपके रक्त-संचारसे फिर हरी-भरी हो जायेगी।"

"तो क्या मैं मर जाऊँ ?"

"हाँ, जो युद्ध नहीं करना चाहता—अहिंसक है—वह मातृभूमिके ऋणसे उऋण होनेके लिए स्वयं उसकी वेदीपर बलि हो जाये।"

"कोई आवश्यकता नहीं, चुण्डावत सरदार, इस समय तुम यहाँसे चले जाओ।"

"मैं नहीं जा सकता"—इतना कहकर क्रोधमें भरे हुए चुण्डावत सरदार-ने सामने लगे हुए बिल्लोरी आइनेको पत्थर मारकर तोड़ डाला और सैनिकोंको आज्ञा दी कि, "कर्त्तव्य-विमुख राणाजीको घोड़ेपर बिठाओ। आज हम फिर एक बार लोहा बजाकर अपनी मातृ-भूमिका मुख उज्ज्वल करेंगे ! राणा प्रतापके समक्ष की हुई प्रतिज्ञा आज सार्थक करेंगे।"

सैनिकोंने राणाजीको बलपूर्वक घोड़ेपर बिठा दिया। राणाजी क्रोधके

आवेशमें चुण्डावत सरदारको राजद्रोही, विश्वासघाती, उद्दण्ड आदि अनेक उपाधियाँ वितरण करने लगे। सैनिकों और सरदारोंका इस ओर ध्यान ही नही था। वे सब बडे चावसे झूमते हुए राणाजीको घेरे हुए रण-क्षेत्रकी ओर चल दिये। मार्गमें चलते हुए राणाजीकी मोह-निद्रा दूर हुई। उन्हे चुण्डावत सरदारका यह कार्य उचित जान पडा। उन्हे अपनी अकर्मण्यतापर पश्चात्ताप होने लगा। वे सरदारको सम्बोधन करके बोले, "शालुम्ब्रा सरदार, वास्तवमें आज तुमने वह वीरोचित कार्य किया है, जिसकी याद सदैव बनी रहेगी। तुमने मुझे विलासिताके अँधेरे कूपसे निकालकर मेवाडका मुख उज्ज्वल किया है। इसके लिए मेवाड तुम्हारा कृतज्ञ रहेगा। अब तुम देखोगे, प्रतापका पुत्र, बप्पारावलका वंशधर कहलाने योग्य है अथवा नहीं? आज रण-क्षेत्रमें इसकी परीक्षा होगी।"

शालुम्ब्रा सरदार हाथ जोडकर बोले, "राणाजी, यदि कुछ अपराध हुआ है तो क्षमा कीजिए। स्वामीको कुपथसे निकालकर सुमार्गपर लाना सेवकका कर्त्तव्य है, मैंने कोई नया कार्य नही किया, केवल सेवकने अपना कर्त्तव्य पालन किया है।"

राणा अमरसिंह अपने वीर सैनिकोंको लेकर जहाँगीरकी सेनापर बाजकी तरह झपट पडे और अपने अतुल पराक्रम-द्वारा जहाँगीरका मान मर्दन कर दिया। थोडे दिनो बाद अमरसिंहने चित्तौडगढको मुगल बादशाहकी पराधीनतासे मुक्त कर लिया। इस प्रकार राणा प्रतापकी अन्तिम अभिलाषा पूर्ण हुई।

मार्च १९२२ ई०

■

युवतीने क्रोधके वेगको रोककर कहा, "कविजी, कविता फिर भी रची जायेगी, इस समय अपनी इज्जत बचाओ।"

यह कवि बीकानेर महाराज रायसिंहके भाई थे। जब बीकानेर-नरेशने अपनी लडकी अकबरको दी, तो इन्होने उनका तीव्र प्रतिवाद किया और वे लडनेके लिए तैयार हो गये। इसपर वे आगरेमें नज़र-क़ैद कर लिये गये। इन्हे कविता करनेका व्यसन था। अकबर बादशाह इनकी कविता चावसे सुनता था। हर समय इन्हें यही एक धुन रहती थी। इनका नाम पृथ्वीराज था। अन्यमनस्क भावसे बोले,

"क्यो, क्या हुआ ? प्राणप्रिये, इस समय मुझे क्षमा करो, मुझे एक समस्या-पूर्त्ति करनी है, इसलिए . ."

युवती [बात काटकर] "तो साफ क्यो नही कहते कि इस समय चली जा, नही तो कविता अच्छी न बन सकेगी।"

पृथ्वी० "अच्छा, यही समझ लो।"

युवती . "मै खूब समझ चुकी हूँ। यदि यही अकर्मण्यता न होती, तो आपको इस प्रकार दासत्व-वृत्ति स्वीकार नही करनी पडती। देशके ऊपर आपत्तिकी घनघोर घटा छायी हुई है, और आप कविता करने बैठे हैं। धिक्कार है आपकी कविताको, फिटकार है आपकी बुद्धिको, लानत है आपकी सूझको !"

पृथ्वी० "तो क्या कविता करना छोड दूँ ?"

युवती "अवश्य !"

पृथ्वी० : "ध्यान रहे, ससारमे सब वस्तु मिट सकती है, परन्तु कृति

नही मिटती ।"

युवती "मैं सौगन्धपूर्वक कहती हूँ कि ससारमें सब कुछ मिट सकता है, परन्तु कुलमें लगा हुआ कलंक कभी नही मिटता ।"

पृथ्वी० 'कवितासे सैनिकोके हृदयमें वीर-भाव पैदा होते हैं । चन्दवरदाईका नाम उसकी कविताके कारण अमर हो गया है ।"

युवती "हाँ, यदि कवितामे हृदयके भाव हो, और स्वय कवि भी अपने कथनानुसार कर्मवीर हो तब न ? जब लोगोको यह मालूम होगा कि यह कृति उस अकर्मण्यकी है, जो परतन्त्रताके बन्धनमें जकडा हुआ था, जो अपनी बहनका सर्वनाश आँखोंसे देखता रहा, तब वह आपकी कृतिका उपहास करेंगे । चन्दवरदाईका नाम कविताके कारण नही, उसकी वीरताके कारण अमर है ।"

पृथ्वी० . "साहित्य और सगीतसे रहित मनुष्य पशु है ।"

युवती · "यदि किसी घरमें आग लगी हो, तो उसके निवासियोको गाते-बजाते देखकर तुम क्या कहोगे ?"

पृथ्वी० "मूर्ख कहूँगा, और क्या ?"

युवती : "क्यो ? गाना तो कोई बुरी चीज नही ।"

पृथ्वी० : "बुरी चीज नही, किन्तु उस समय उसकी आवश्यकता नहो । समयपर ही सब कार्य अच्छे लगते है ।"

युवती · "बस, आपके कथनानुसार फैसला हो गया । कविता करना बुरा नहीं, किन्तु इस समय उसकी आवश्यकता नही ।"

पृथ्वी० : "इसका तात्पर्य ?"

युवती : "यही कि आप क्षत्रिय है । भारत-माताको इस समय वीर-पुत्रोकी आवश्यकता है । आप भी सोच लें, यदि आज वीर राजपूत समस्यापूर्तिमें लगे रहें, तो फिर देशको समस्याको कौन हल करेगा ?"

पृथ्वी० "तो तुम क्या चाहती हो ?"

युवती "यही कि देशसेवाके व्रतमें केसरिया बाना पहनकर शत्रुओं-का संहार करो। आज इनके अत्याचारोसे भारत-माता रुदन कर रही है, स्त्री-बच्चोकी गरदनोपर निर्दयतापूर्वक छुरी चलायी जा रही है, वीर लल-नाओका बलपूर्वक शील नष्ट किया जा रहा है। अतएव इस समय कविता करना योग्य नही। प्रतापका साथ दो, प्राणनाथ, प्रताप-जैसे बनो!"

कहते-कहते युवतीका गला रुँध गया। वह अब अपनेको अधिक न सम्भाल सकी। लज्जा, घृणा, मानसिक सन्ताप आदिने उसे बोलनेमें अस-मर्थ कर दिया। वह अपने पतिके पाँवोमें पडकर फूट-फूटकर रोने लगी। युवतीके रुदनमें कुछ बेबसीका ऐसा अश था कि पृथ्वीराजका कठोर हृदय भी पिघल गया और वह उत्सुकतासे उसके दुःखका कारण पूछने लगे।

जिस समय बादशाह अकबरके हाथोमे भारतवर्षके शासनकी बागडोर थी, उस समय वीर-चूडामणि प्रतापको छोडकर प्राय सभी राजे अपनी स्वाधीनता खोकर, पूर्वजोकी मान-मर्यादाको तिलाजलि देकर दासत्ववृत्ति स्वीकार कर चुके थे। जोधपुरका राजा उदयसिह अपनी बहन जोधाबाईका और आमेरके राजा मानसिह अपनी बहनका सम्बन्ध बादशाहसे करके राजपूत-जैसे उज्ज्वल कुलमें कलक लगा चुके थे। महाराणा प्रतापके छोटे भाई शक्तसिह भी घरेलू झगडोके कारण अकबरसे जा मिले थे। इन्ही शिशोदिया-वीर शक्तसिहकी कन्या बीकानेरके राज-कुमार पृथ्वीसिहको ब्याही थी। शक्तसिह यद्यपि इस समय "घरका भेदी लका ढावे" इस कहावतके निशाने बन रहे थे, किन्तु उनकी कन्याके हृदयमें मातृभूमिके प्रेमका अकुर फूट निकला था। वह क्षत्राणी थी, उसे अपने कुलकी मान-मर्यादाका पूरा ध्यान था। उसके कुलकी असख्य वीरागनाएँ जीते-जी आगमें कूदकर मरी है, रण-क्षेत्रमें शत्रुओका रक्त

बहाकर राजपूती शान दिखा गयी है, इत्यादि बातोंका उसे पूरा ज्ञान था। वह भी अपने पतिके साथ आगरेमें रहती थी। अकबर अपनी कामवासनाएँ तृप्त करनेके लिए अनेक यत्न करता रहता था। अपनी विलासिताके लिए वह आगरेके किलेमें महीनेमें एक बार मीनाबाजार लगवाता था। उसमें केवल स्त्रियोंके जानेकी आज्ञा थी। व्यापारियोंकी स्त्रियाँ अनेक देशोंके शिल्पजात पदार्थ लाकर उस मेलेमें कारबार किया करती थीं। और राज-परिवारोंकी स्त्रियाँ वहाँ जाकर मनमानी सामग्री मोल लिया करती थीं। पाखण्डी अकबर भी भेष बदले हुए वहाँ जाता था और किसी-न-किसी सुन्दर युवतीको अपने षड्यन्त्रमें फाँस लिया करता था। एक समय पृथ्वीराजकी पत्नी किरन भी उक्त मीनाबाजारकी सैर करने गयी। अकबरने इसे धोखेसे भुलावा देकर महलोंमें बुला लिया। किरन अकबरके पैशाचिक भावको ताड़ गयी, लपककर उसे नीचे बैठ बादशाहको दे मारा और कमरसे एक छुरा निकाल बादशाहकी छातीपर बैठ सिंहनीकी तरह गरजकर बोली, 'ईश्वरके नाममें शपथ करके कह कि और किसी अबलाके शील नष्ट करनेकी इच्छा नहीं करूँगा। कह, शपथ कर, नहीं तो यह क्षीण छुरी अभी तेरे हृदयके रुधिरसे स्नान करेगी।" कायर अकबर प्राणोंकी भिक्षा माँगने लगा, उसने तत्काल वीर-बालाकी आज्ञाका पालन किया। वीर-नारी किरनने भी अकबरको जीवन-दान दिया।

इसी घटनासे घायल सिंहनीकी तरह जब किरन अपने मकानपर आयी, तब वहाँ पृथ्वीराजको चिन्तित करते देख वीर बालाका क्रोधरूपी समुद्र उमड़ आया और इसी आवेशमें अपने पतिको उनके क्षत्रियोचित कर्तव्यका ज्ञान करानेके लिए भर्त्सना की। सिसोदिया राज-कन्याओंने हमेशा उनके लिए जान दी है। इन्होंने कभी अपने उज्ज्वल कुलमें कलंक नहीं लगने दिया। यहाँ मालूम है कि उस समय जितनी सिसोदिया राज-कुमारी क्वाँरी रहती थी, वह मारे गर्वके फूल उठता था, लोग उनके साथकी

सराहना करते थे। चित्तौडकी राजकुमारी पटरानी रहेगी, उसीकी सन्तान राज्यकी उत्तराधिकारिणी होगी, इन्ही शर्तोंपर वे व्याही जाती थीं। इसी वीर-वाला किरनने महाराणा प्रतापका सन्धि पत्र जो अकबरके पास आया था, उसके उत्तरमें अपने पति पृथ्वीराजसे वीरोचित शब्दोंमे एक पत्र लिखवाया था, जिसे पढकर महाराणा प्रताप फिर अपने खोये हुए धैर्यको प्राप्त कर सके थे।

वीर-सन्देश, आगरा, १९२८ ई०

■

आशाशाहकी वीर-माता

आशाशाहकी वीर-माताका नाम ऐतिहासिक विद्वानोको ज्ञात नहीं। वह क़ीमती मोतीकी भाँति अन्तस्थलमे छिपा हुआ है, फिर भी उसकी प्रखर आभा ससारको बलात् अपनी ओर आकर्षित कर रही है। अपने जीवनमें उसने क्या-क्या लोकोपयोगी और वीरोचित कार्य किये, उसका निर्मल चरित्र और कोमल स्वभाव कितना बढा-चढा था, वह सब कुछ अन्धकारमें विलीन हो गया है। तो भी उसके जीवनका केवल एक कार्य ही ऐसा है जो हमारी आँखें खोलता है और उसकी मनोवृत्तिपर काफ़ी प्रकाश डालता है। पूर्व युगमें सर्व-साधारणके विषयमें कुछ लिखा जाये, ऐसी भारतमें प्रथा ही नही थी। केवल राजे-महाराजाओंके गीत गाये जाते थे। यही कारण है कि हम वीर-माताके लोकोत्तर कार्योंसे अनभिज्ञ हैं।

इस देवीने हिन्दू-कुल तिलक महाराणा प्रतापके पिता उदयसिंहकी—जब कि वह निरा बालक था—प्राण-रक्षा की थी। उस निराश्रयको अपने कुटुम्बका मोह छोडकर आश्रय दिया था। यही कारण है कि राणा उदयसिंहके सम्बन्धमे लिखते हुए टॉड् साहबको अपने 'राजस्थान' में प्रसगवश इस देवीका उल्लेख भी दो लाइनोंमें करना पडा है।

चित्तौडके राज्यासनपर बैठते ही दासी-पुत्र बनवीर[1]का हृदय बदल गया। उसे बे-पिये ही दो बोतलका नशा रहने लगा। स्वार्थपरता कृतज्ञताको घर दबाती है, लोभ दयाको स्थिर नहीं रहने देता। जो बनवीर विक्रमाजितको गद्दीसे उतारकर राज्य-प्राप्त करना घोर पाप समझता

---

१. यह बनवीर दासी-पुत्र था और उदयसिंहका रिश्तेमें चाचा लगता था। राणा सग्रामसिहके स्वर्गासीन होनेपर उसके पुत्र क्रमश रत्नसिंह और विक्रमाजित मेवाड़के अधीश्वर हुए, किन्तु विक्रमाजित अयोग्य था, इसलिए मेवाड़हितैषी सरदारोंने विक्रमाजितको हटाकर बालक उदयसिंहके बालिग होने तक बनवीरको चित्तौड़के राज्यासनपर अभिषिक्त कर दिया था।

था वही बनवीर राज्यासनपर बैठते ही सदा निष्कण्टक राज्य करते रहनेकी कूटनीति सोचने लगा। वह राज्यके यथार्थ उत्तराधिकारी बालक उदयसिंहको अपने पथमें काँटा समझकर उसे मिटा देनेके लिए क्रूर रात्रिकी बाट जोहने लगा। धीरे-धीरे रात्रि हो गयी। कुमार उदयसिंहने भोजनादि करके शयन किया। उनकी धाय बिस्तरेपर बैठ सेवा करने लगी। कुछ विलम्बके पीछे रणवासमे घोर आर्त्तनाद और रोनेका शब्द सुनाई आने लगा। इस शब्दको सुनकर पन्ना धाय विस्मित हुई। वह डरसे उठना ही चाहती थी, कि इतनेमें ही वारी (नाई) राजकुमारकी जूठन आदि उठानेको वहाँ आया और भय-विह्वल भावसे कहने लगा, "बहुत बुरा हुआ, सत्यानाश हो गया, बनवीरने राणा विक्रमाजितको मार डाला।" धायका हृदय काँप गया, वह समझ गयी कि निष्ठुर हृदय बनवीर केवल विक्रमाजितको ही मारकर चुप न होगा, वरन् उदयसिंहके मारनेको भी आवेगा। उसने तत्काल बालक उदयसिंहको, जिसकी अवस्था उस समय पन्द्रह वर्षकी थी, किसी युक्तिसे बाहर निकाल दिया और उसके पलगपर उसी अवस्थाके अपने पुत्रको सुला दिया। इतनेमें ही रक्त-लोलुपी पिशाच-हृदय बनवीर आ पहुँचा और बालक उदयसिंहको खोजने लगा। तब पन्ना धायने इस रक्त-लोलुपको अपने पुत्रकी ओर सकेत कर दिया, उस चाण्डालने उसीको राजकुमार समझ उसके कोमल हृदयमें खजर भोक दिया। बालक सदैवको सो गया। पन्ना धायने अपने स्वामीके हितार्थ अपने बालकका बलिदान करके उफ तक न की। अपने पुत्रके मारे जानेपर पन्ना धाय महलोसे निकलकर उदयसिंहके पास जा पहुँची। आगे टॉड् साहब लिखते है कि कुमारको साथ लेकर पन्ना धायने वीर वाघजीके पुत्र सिहरावके पास जाकर रहनेकी प्रार्थना की, बनवीरके भयसे उसने राजकुमारको रक्षा करना स्वीकार नही किया और अत्यन्त शोकयुक्त होकर बोला, "मैं तो बहुतेरा चाहता हूँ कि राजकुमारको रक्षा करूँ, परन्तु बनवीर इस बातको जानकर वशसहित मेरा सहार कर डालेगा।

मुझमें इतनी सामर्थ्य नहीं कि उसका सामना करूँ।" इसके उपरान्त पन्ना देवलको छोडकर डुगरपुर नामक स्थानमें गयी और वहाँके रावल ऐशकर्ण (यशकर्ण) के पास राजकुमारको रखना चाहा, परन्तु उसने भी भयके मारे राजकुमारको नही रखा। तदुपरान्त विश्वासी और हितकारी भीलोके द्वारा रक्षित हो आरावलीके दुर्गम पहाड और ईडरके कूट मार्गों-को लाँघकर, कुमारको साथ लिये हुए पन्ना कुभलमेरु-दुर्गमें पहुँची। यहाँ-पर पन्नाकी बुद्धिमानीसे काम हो गया। देपुरा गोत्र-कुलमें उत्पन्न हुआ आशाशाह देपुरा नामक एक जैन उस समय कुभलमेरुमें किलेदार था। पन्नाने उससे मिलना चाहा। आशाशाहने प्रार्थना स्वीकार करके विश्राम-गृहमें पन्नाको बुलाया। वहाँ पहुँचते ही धात्रीने बालक उदयसिंहको आशा-शाहकी गोदमें बिठाकर कहा, "अपने राजाके प्राण बचाइए," परन्तु आशाशाहने अप्रसन्न और भीत होकर कुमारको गोदसे उतारना चाहा। आशाकी माता भी वहीपर थी। पुत्रकी ऐसी कायरता देखकर उसको फटकारते हुए उपदेशपूर्ण शब्दोमे बोली,[1]

"आशा, क्या तू मेरा पुत्र नही है? क्या मैंने तुझे व्यर्थमें पाल-पोस-कर इतना बडा किया है? धिक्कार है तेरे जीवनको! क्या ही अच्छा होता जो तू मेरे उदरसे जन्म ही न लेता, तेरे भारसे पृथ्वी बोझो मरती है। जो मनुष्य विपत्तिमें किसीके काम नही आता, निरपराधियो और बेकसोको अत्याचारियोके चगुलसे सामर्थ्य रहते हुए भी नही बचा सकता, निराश्रयोको आश्रय नही दे सकता, ऐसे अधमको ससारमें जीनेका अधिकार नही। आ, जिन हाथोसे लोरियाँ गा-गाकर तुझे इतना बडा किया, आज उन्हीं हाथोंमे तेरा जीवन समाप्त कर दूँ।"

इतना कहकर वह भूखी शेरनीकी भाँति आशाशाहपर झपट पडी और चाहती थी कि ऐसे नराधम, भीरु, कायर और अधर्मी पुत्रका गला घोट

---

१ टाड, राजस्थान - द्वि० ख०, अ० ६, पृ० २४५-४६।

दे, कि आशाशाह अपनी वीर-माताके पाँवोमे गिर पडा। उसकी भीरुता हिरन हो गयी। वह घुटने टेक अश्रुबिन्दुओंमे अपनी वीर-माताके चरण-कमलोका अभिषेक करने लगा। वह मातृ भक्त गद्-गद कण्ठसे बोला, "माँ, तुम्हारा पुत्र होकर भी मैं यह भीरुता कर सकता था? क्या सिंहिनी-पुत्र शृगालके भयसे अपने धर्मसे विमुख हो सकता है? क्या प्राणोके तुच्छ मोहमें पडकर मैं शरणागतकी रक्षा न करके अपने धर्मसे विमुख हो सकता था? मेरी अच्छी अम्मा, क्या वास्तवमें तुम्हे यह भ्रम हो गया था?"

आशाशाहके वीरोचित शब्द सुनकर वीर-माताका हृदय उमड आया वह उसके सिरपर प्यारसे हाथ फेरने लगी। आशाशाह माताका यह व्यवहार देखकर मुसकराकर बोला, "माँ, यह क्या? कहाँ तो तुम मेरा जीवन समाप्त कर देना चाहती थी और कहाँ ' "

वीर-माता बात काटकर बोली, "बेटा, क्षत्राणियोका अद्भुत स्वभाव होता है। वह कर्त्तव्य-विमुख पुत्र या पतिका मुँह देखना नही चाहती, किन्तु कर्त्तव्य-परायणकी वह बलाएँ लेती हैं, उनके लिए मिट जाती हैं।"

वीर आशाशाहने कुमार उदयसिंहको अपना भतीजा कहके प्रसिद्ध किया और उदयसिंहके युवा होनेपर आशाशाहने अन्य सामन्तोकी सहायता-से चित्तौडका सिंहासन उसे दिला दिया। जब कि मेवाडके बडे-बडे सामन्त, राज्यमे बडी-बडी जागीर पानेवाले चित्तौडके यथार्थ उत्तराधिकारी कुमार उदयसिंहको शरण न दे सके, तब एक जैन-कुलोत्पन्न महिलाने जो कार्य किया वह अवश्य ही सराहने योग्य है। आज भी इस सभ्यताके युगमे जब कि हर प्रकारकी शिकायतोके लिए न्यायालय खुले हुए है, राजद्रोही-को शरणदेनेवाला दण्डनीय होता है, तब उस ज़मानेमें जब कि राजा ही सर्व-सर्वा होता था, वह बिना किसी अदालतके अपनी इच्छानुसार मनुष्यो-के प्राण-हरण कर सकता था, तब ऐसे सकटके समय भी उस महिलारत्न-ने जो कार्य कर दिखाया वह अभिनन्दनीय है।

नवम्बर १९३२ ई०

■

भामाशाह

स्वाधीनताकी क्रीडास्थली वीरप्रसवा मेवाडभूमिके इतिहासमें राणा-प्रतापके साथ भामाशाहका नाम सदैव अमर रहेगा। इतिहास-प्रसिद्ध हल्दीघाटीके युद्धमें वीर भामाशाह और उसका भाई ताराचन्द भी लडा था[1]। इक्कीस हजार राजपूतोंने असख्य यवन सेनाके साथ युद्ध करके स्वतन्त्रताकी वेदीपर अपने प्राणोंकी आहुति दे दी, किन्तु दुर्भाग्य कि वे मेवाडको यवनों-द्वारा पददलित होनेसे न बचा सके। समस्त मेवाडपर यवनोंका आतक छा गया। युद्ध-परित्याग करनेपर राणा प्रताप मेवाडका पुनरुद्धार करनेकी प्रबल आकाक्षाको लिये हुए बीरान जगलोंमें भटकते फिरते थे। उनके ऐशो-आराममें पलने योग्य बच्चे, भोजनके लिए उनके चारो तरफ रोते रहते थे। उनके रहनेके लिए कोई सुरक्षित स्थान न था। अत्याचारी मुगलोंके आक्रमणोंके कारण बना-बनाया भोजन कई बार राणाजीको छोडना पडा था। इतनेपर भी आनपर मिटनेवाले समर-केसरी प्रताप विचलित नहीं हुए। वह अपने पुत्रो और सम्बन्धियोको प्रसन्नतापूर्वक रणक्षेत्रमें अपने साथ रहते हुए देखकर यही कहा करते थे कि राजपूतोका

---

१ हल्दीघाटीका यह विख्यात युद्ध १८ जून १५७६ ईसवीको एक घड़ी दिन चढे आरम्भ हुआ था और उसी दिन सायकाल तक समाप्त हो गया था। (चाँद, वर्ष ११, सख्या १००, पृष्ठ ११८) और अब हर्ष है कि कुछ वर्षोंसे ज्येष्ठ शुक्ला ७ को इस स्वतन्त्रता बलिदान-दिवसकी पवित्र स्मृतिमें कुछ कर्मवीरोंने वहाँ मेलेका आयोजन करके किसी कविके निम्नलिखित उद्गारोंकी पूर्ति की है :

शहीदों के मजारों पर जुड़ेंगे हर बरस मेले।
वतन पर मरनेवालों का यही बाक़ी निशा होगा॥

जन्म ही इसलिए होता है, परन्तु उस पर्वत-जैसे स्थिर मनुष्योंको भी आपत्तियोंके प्रलयकारी झोकोंने विचलित कर दिया। एक दफा जगली अन्नके आटेकी रोटियाँ बनायी गयी और प्रत्येकके भागमे एक-एक रोटी—आधी सुबह और आधी शामके लिए—आयी। राणा प्रताप राजनीतिक पेचीदा उलझनोंके सुलझानेमें व्यस्त थे, वे मातृभूमिकी परतन्त्रतासे दुःखी होकर गरम निःश्वास छोड रहे थे कि इतनेमे लडकीके हृदयभेदी चीत्कारने उन्हे चौंका दिया। बात यह हुई कि जंगली बिल्ली छोटी लडकीके हाथसे रोटीको छीनकर ले गयी, जिससे वह मारे भूखके चिल्लाने लगी। ऐसी-ऐसी अनेक आपत्तियोसे घिरे हुए, शत्रुके प्रवाहको रोकनेमें असमर्थ होनेके कारण, वीरचूडामणि प्रताप मेवाड छोडनेको जब उद्यत हुए, तब भामाशाह राणाजीके स्वदेश-निर्वासनके विचारको सुनकर रो उठा।

हल्दीघाटीके युद्धके बाद भामाशाह कुम्भलमेरुकी प्रजाको लेकर मालवेमें रामपुरेकी ओर चला गया था। वहाँ भामाशाह और उसके भाई ताराचन्दने मालवेपर चढाई करके पच्चीस लाख रुपये तथा बीस हजार अशर्फ़ियाँ दण्ड-स्वरूप वसूल की, इस सकटावस्थामें उस वीरने देशभक्तिसे तथा स्वामिभक्तिसे प्रेरित होकर, कर्नल जेम्स टॉडके कथनानुसार, राणा प्रतापको जो धन भेंट किया था, वह इतना था कि पच्चीस हजार सैनिकोंका बारह वर्ष तक निर्वाह हो सकता था। इस महान् उपकार करनेके कारण महात्मा भामाशाह मेवाडके उद्धारकर्त्ता कहलाये[1]। भामाशाहके इस अपूर्व त्यागके सम्बन्धमें भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजीने लिखा है—

जा धन के हित नारि तजै पति,
पूत तजै पितु शीलहि खोई।
भाई सों भाई लरै रिपु से पुनि,
मित्रता मित्र तजै दुख जोई।

---

१ देखो, टाड् राजस्थान : जि० १, पृ० २४६।

ता धन को वनिया ह्वै गिन्यो न,
दियो दुख देश के आरत होई।
स्वारथ अर्प्यं तुम्हारोई है,
तुमरे सम और न या जग कोई॥

देशभक्त भामाशाहका यह कैसा अपूर्व स्वार्थ-त्याग है? जिस धनके लिए कैकेयीने रामको चौदह वर्षके लिए वनवास भेजा, जिस धनके लिए पाण्डव और कौरवोंने अठारह अक्षौहिणी सेना कटवा डाली, जिस धनके लिए वनवीरने बालक उदयसिंहकी हत्या करनेकी असफल चेष्टा की, जिस धनके लिए मारवाड़के कई राजाओंने अपने पिता और भाइयोंका सहार किया, जिस धनके लिए लोगोंने मान वेचा, धर्म वेचा, कुल-गौरव वेचा, साथ ही देशकी स्वतन्त्रता वेची, वही धन भामाशाहने देशोद्धारके लिए प्रतापको अर्पण कर दिया। भामाशाहका यह अनोखा त्याग धनलोलुपी मनुष्योंकी बलात् आँखें खोलकर उन्हें देशभक्तिका पाठ पढाता है।

भारमलके[1] स्वर्गवास होनेपर राणा प्रतापने भामाशाहको अपना मन्त्री नियत किया था, हल्दीघाटीके युद्धके बाद जब भामाशाह मालवेकी ओर चला गया था, तब उसकी अनुपस्थितिमें रामा सहाणी महाराणाके प्रधान-का कार्य करने लगा था। भामाशाहके आनेपर रामासे प्रधानका कार्य-भार लेकर पुन भामाशाहको सौंप दिया गया। उसी समय किसी कविका कहा गया प्राचीन पद्य इस प्रकार है,

भामो परधानो करे रामो कीधो रद्द।[2]

भामाशाहके दिये हुए रुपयोंका सहारा पाकर राणा प्रतापने फिर बिखरी हुई शक्तिको बटोरकर रण-भेरी बजा दी, जिसे सुनते ही शत्रुओं-के हृदय दहल गये। कायरोंके प्राण-पखेरू उड गये, अकबरके होश-हवास

---

१ भामाशाहका पिता।

२ राजपूतानेका इतिहास: तृ० ख०, पृ० ७४३।

जाते रहे। राणाजी और वीर भामाशाह अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित होकर जगह-जगह आक्रमण करते हुए यवनो-द्वारा विजित मेवाडको पुन अपने अधिकारमें करने लगे, प० झावरमल्लजी शर्मा सम्पादक दैनिक हिन्दू ससारने लिखा है, "इन धावोमें भी भामाशाहकी वीरताके हाथ देखनेका महाराणाको खूब अवसर मिला और उससे वे बडे प्रसन्न हुए[1]।"

" इसी प्रकार महाराणा अपने प्रवल पराक्रान्त वीरोकी सहायता-से वरावर आक्रमण करते रहे और सवत् १६४३ तक चित्तौड और माण्डलगढको छोडकर समस्त मेवाडपर फिरसे उनका अधिकार हो गया। इस विजयमें महाराणाकी साहस-प्रधान वीरताके साथ भामाशाहकी उदार सहायता और राजपूत सैनिकोका आत्म-वलिदान ही मुख्य कारण था। आज भामाशाह नही हैं, किन्तु उनकी उदारताका वखान सर्वत्र वडे गौरवके साथ किया जाता है"

"प्राय साढे तीन-सौ वर्ष होनेको आये, भामाशाहके वशज आज भी भामाशाहके नामपर सम्मान पा रहे हैं। मेवाड-राजधानी उदयपुरमें भामाशाहके वशजको पच-पचायत और अन्य विशेष उपलक्ष्योमें सर्वप्रथम गौरव दिया जाता है। समयके उलट-फेर अथवा कालचक्रकी महिमासे भामाशाहके वशज आज मेवाडके दीवानपदपर नही हैं और न धनका वल ही उनके पास रह गया है। इसलिए धनकी पूजाके इस दुर्घट समयमें उनकी प्रधानता, उनकी धन-शक्तिसम्पन्न जाति-विरादरीके अन्य लोगो-को अखरती है, किन्तु उनके पुण्यश्लोक पूर्वज भामाशाहके नामका गौरव ही ढाल बनकर उनकी रक्षा कर रहा है। भामाशाहके वशजोकी पर-म्परागत प्रतिष्ठाकी रक्षाके लिए सवत् १९१२ में तत्कालीन उदय-

---

१ श्री ओझाजीने भी लिखा है—महाराणा भामाशाहकी वड़ी खातिर करता था और वह दिवेरके शाही थानेपर हमला करनेके समय भी राजपूतोंके साथ था। राजपूतानेका इतिहास : पृ० ७४३।

पुराघोश महाराणा सरूपसिंहको एक आज्ञापत्र निकालना पडा था, जिसकी नकल ज्योंकी-त्यों इस प्रकार है,

"श्री रामोजयति

श्रीगनेशजीप्रसादात् श्रीएकलिंगजी प्रसादत्त्

मालेका निशान

(सहीं)

स्वस्तिश्री उदयपुर सुभमुथाने महाराजाधिराज महाराणाजी श्री सरूपसिंवजी आदेशात् कावड्या जेचन्द कुनणो वीरचन्दकस्य अप्र थारा वडा वासा भामो कावड्यो ई राजम्हे साम ध्रमासु काम चाकरी करी जो की मरजाद ठेठसू थ्या है म्हाजना को जातम्हे वावनी तथा चौका को जीमण वा सीगपूजा होवे जीम्हे पहेली तलक थारे होतो हो सो अगला नगर सेठी वेणीदास करसो कर्यो अर वेदर्याफत तलक थारे न्हीं करवा दीदो अवारू थारो सालमो दीखो सो नगे कर सेठ पेमचन्दने हुकम की दो मो वी भी अरज करी अर न्यात म्हे हकमर मालम हुई मो अव तलक माफक दमतुरके थे थारो कराय्या जाजो आगासु थारा वस को होवेगा जी के तलक हुवा जावेगा पंचाने वी हुकम करदीय्यो है सो पेलीतलक थारे होवेगा। प्रवानगी म्हेता सेरसीघ सवत् १९१२ जेठसुद १५ वुवे।"[1]

इसका अभिप्राय यह है, "भामाशाहके मुख्य वशधरकी यह प्रतिष्ठा चली आती रही, कि जब महाजनोंमें समस्त जाति समुदायका भोजन आदि होता, तब सबसे प्रथम उसके तिलक किया जाता था, परन्तु पीछेसे महाजनोंने उसके वशवालोंके तिलक करना बन्द कर दिया, तब महाराणा स्वरूपसिंहने उसके कुलकी अच्छी सेवाका स्मरण कर इस विषयकी जाँच करायी और आज्ञा दी कि महाजनोंकी जातिमें वावनी (सारी जातिका)

---

१ हिन्दू-समार : दीपावली अक, कार्तिक कृ० ३०, स० १९८२ वि०।

भोजन) तथा चौकेका भोजन व सिंहपूजामें पहलेके अनुसार तिलक भामाशाहके मुख्य वंशधरके ही किया जाये। इस विषयका परवाना वि० सं० १९१२ ज्येष्ठ सुदी १५ को जयचन्द कुनणा वीरचन्द कावडियाके नाम कर दिया, तबसे भामाशाहके मुख्य वंशधरके तिलक होने लगा।"

"फिर महाजनोंने महाराणाकी उक्त आज्ञाका पालन न किया, जिससे महाराणा फतहसिंहके समय वि० सं० १९५२ कार्तिक सुदी १२ को मुकदमा होकर उसके तिलक किये जानेकी आज्ञा दी गयी।"[1]

वीर भामाशाह, तुम धन्य हो! आज प्राय साढे तीन-सौ वर्षसे तुम इस संसारमें नहीं हो, परन्तु, यहांके बच्चे-बच्चेकी जबानपर तुम्हारे पवित्र नामकी छाप लगी हुई है[2]। जिस देशके लिए तुमने इतना बडा आत्म-त्याग किया था, वह मेवाड पुन अपनी स्वाधीनता प्राय खो बैठा

---

१ राजपूतानेका इतिहास, पृ० ७८७-८८।

२ मेवाड़का अमूल्य और अप्राप्य ऐतिहासिक ग्रन्थरत्न 'वीरविनोद' में, जिसको कि मुझे सौभाग्यसे मान्य ओझाजीके यहाँ देखनेका ज़रा-सा अवसर मिल गया था, पृ० २५१ पर लिखा है कि,

"भामाशाह बड़ी जुरअतका आदमी था। यह महाराणा प्रतापसिंहके शुरू समयसे महाराणा अमरसिंहके राज्यके ढाई-तीन वर्ष तक प्रधान रहा। इसने ऊपर लिखी हुई बड़ी-बड़ी लड़ाइयोंमें हजारों आदमियोंका खर्च चलाया। यह नामी प्रधान संवत् १६५६ माघ शुक्ल ११ (हि० १००८। सा० ६ रजब ई० १६०० ता० २७ जनवरी) को इक्यावन वर्ष और सात महीनेकी उमरमें परलोकको सिधारा। इसका जन्म संवत् १६०४ आषाढ शुक्ल १० (हि० ९५४ ता० ९ जमादियुल अव्वल ई० १५४७ ता० २८ जून) सोमवारको हुआ था। इसने मरनेके एक दिन पहले अपनी स्त्रीको एक बही अपने हाथकी लिखी हुई दी और कहा कि इसमें मेवाड़के खज़ानेका कुल हाल लिखा हुआ है। जिस वक्त तकलीफ़ हो, यही बही उन महाराणाकी नज़र करना। यह खैरख्वाह प्रधान इस बहीके लिखे कुल खज़ानेसे महाराणा अमरसिंहका कई वर्षों तक खर्च चलाता रहा। मरनेपर इसके बेटे जीवशाहको महाराणा अमरसिंहने प्रधान पद दिया था। वह भी खैरख्वाह आदमी था। लेकिन भामाशाहकी सानीका होना कठिन था।"

है, परन्तु फिर भी वहाँ तुम्हारा गुण-गान होता रहता है। तुमने अपनी अक्षयकीर्तिसे स्वयको नही, किन्तु समस्त जैन-जातिका मस्तक ऊँचा कर दिया है। नि सन्देह वह दिन धन्य होगा, जिस दिन भारतवर्षकी स्वतन्त्रताके लिए जैन-समाजके धन-कुवेरोमें भामाशाह-जैसे सद्भावोका उदय होगा।

जिस नररत्नका ऊपर उल्लेख किया गया है, उसके चरित्र, दान आदिके सम्बन्धसे ऐतिहासिकोकी चिरकालसे यही धारणा रही है, किन्तु हालमे रायवहादुर महामहोपाध्याय प० गौरीशकर हीराचन्दजी ओझाने अपने राजपूतानेके इतिहास तीसरे खण्डमें 'महाराणा प्रतापकी सम्पत्ति' शीर्षकके नीचे महाराणाके निराश होकर मेवाड छोडने और भामाशाहके रुपये देनेपर फिर लडाईके लिए तैयारी करनेकी प्रसिद्ध घटनाको असत्य ठहराया है।

इस विपयमे आपकी युक्तिका सार 'त्यागभूमि' के शब्दोमें इस प्रकार है,

"महाराणा कुम्भा और साँगा आदि-द्वारा उपार्जित अतुल सम्पत्ति अभीतक मौजूद थी, बादशाह अकवर इसे अभीतक न ले पाया था। यदि यह सम्पत्ति न होती तो जहाँगीरसे सन्धि होनेके बाद महाराणा अमरसिंह उसे इतने अमूल्य रत्न कैसे देता? आगे आनेवाले महाराणा जगतसिंह तथा राजसिंह अनेक महादान किस तरह देते और राजसमुद्रादि अनेक वृहत् व्ययसाध्य कार्य किस तरह सम्पन्न होते? इसलिए उस समय भामाशाहने अपनी तरफसे न देकर भिन्न-भिन्न सुरक्षित राजकोषोंसे रुपया लाकर दिया।"

इसपर 'त्यागभूमि' के विद्वान् समालोचक श्री हसजीने लिखा है,

"नि सन्देह इस युक्तिका उत्तर देना कठिन है, परन्तु मेवाडके राजा महाराणा प्रतापको भी अपने खजानोका ज्ञान न हो, यह माननेको स्व-

भावत किसीका दिल तैयार न होगा। ऐसा मान लेना महाराणा प्रतापकी शासन-कुशलता और साधारण नीतिमत्तासे इनकार करना है। दूसरा सवाल यह है कि यदि भामाशाहने अपनी उपार्जित सम्पत्ति न देकर केवल राजकोषोंकी ही सम्पत्ति दी होती, तो उसका और उसके वंशका इतना सम्मान, जिसका उल्लेख श्री ओझाजीने पृ० ७८८ पर किया है[1], हमें बहुत सम्भव नहीं दीखता। एक खज़ाचीका यह तो साधारण-सा कर्त्तव्य है कि वह आवश्यकता पड़नेपर कोषमें रुपये लाकर दे। केवल इतने मात्र-से उसके वंशधरोंकी यह प्रतिष्ठा (महाजनोंके जाति-भोजके अवसरपर पहले उसको तिलक किया जाये) प्रारम्भ हो जाये, यह कुछ बहुत अधिक युक्ति-सगत मालूम नहीं होता[2]।"

इस आलोचनामें श्रद्धेय ओझाजीकी युक्तिके विरुद्ध जो कल्पना की गयी है, वह बहुत कुछ ठीक जान पड़ती है। इसके सिवाय मैं इतना और भी कहना चाहता हूँ कि यदि श्री ओझाजीका यह लिखना ठीक भी मान लिया जाये कि महाराणा कुम्भा और साँगा आदि-द्वारा उपार्जित अतुल सम्पत्ति प्रतापके समय तक सुरक्षित थी—वह खर्च नहीं हुई थी, तो वह सम्पत्ति चित्तौड़ या उदयपुरके कुछ गुप्त खजानोंमें ही सुरक्षित रही होगी, भले ही अकबरको उन खज़ानोंका पता न चल सका हो, परन्तु इन दोनों स्थानोंपर अकबरका अधिकार तो पूरा हो गया था, और ये स्थान अकबर-की फौजसे बराबर घिरे रहते थे, तब युद्धके समय इन गुप्त खज़ानोंसे अतुल सपत्तिका बाहर निकाला जाना कैसे सम्भव हो सकता था? और इसलिए हल्दीघाटीके युद्धके बाद जब प्रतापके पास पैसा नहीं रहा, तब भामाशाहने देश-हितके लिए अपने पाससे—खुदके उपार्जन किये हुए द्रव्यसे—भारी सहायता देकर प्रतापका यह अर्थ-कष्ट दूर किया है, यही ठीक

---

१. सम्मानकी वह बात इसी लेखमें पृ० १६८-१६९ और १७० में उक्त इति-हाससे उद्धृत कर दी गयी है।

२ त्यागभूमि: वर्ष ३, अंक ४, पृ० ४४५।

जँचता है। रही अमरसिंह और जगतसिंह-द्वारा होनेवाले खर्चोंकी बात, वे सब तो चित्तौड तथा उदयपुरके पुन हस्तगत करनेके बाद ही हुए हैं और उनका उक्त गुप्त खजानोंकी सम्पत्तिसे सम्पन्न होना सम्भव है। तब उनके आधारपर भामाशाहकी उस सामयिक विपुल सहायता तथा भारी स्वार्थ-त्यागपर कैसे आपत्ति की जा सकती है? अत इस विषयमें ओझाजीका कथन कुछ युक्तियुक्त प्रतीत नही होता, और यही ठीक जँचता है कि भामाशाहके इस अपूर्व-त्यागकी बदौलत ही उस समय मेवाडका उद्धार हुआ था, और इसीलिए आज भी भामाशाह मेवाडोद्धारकके नामसे प्रसिद्ध हैं[1]।

■

---

[1] यह अंश १ मार्च १९३० को लिखा गया जो कि १९३३ में मेरी राजपूतानेके 'जैनवीर' नामक पुस्तकमें छपा था। इस पुस्तककी प्रस्तावना श्री ओझाजीने लिखी थी और मेरे आग्रह करनेपर भी इस अंशके विरुद्ध एक शब्द भी उन्होंने नहीं लिखा था।

—गोयलीय

• • • •

हियेकी आँखोंसे
जो देखा
•

भाईका त्याग

इधर भाई दूल्हा बनकर ससुराल गया, उधर बहन भरी जवानीमे विधवा हो गयी। भाईके हाथका कँगना खुलने भी न पाया था कि बहनकी चूड़ियाँ टूट गयीं। इधर नववधूकी माँग भरी जा रही थी, उधर बहनके सुहागकी माँग आ गयी। भाईका गठबन्धन बाँधा जा रहा था, बहनका गठबन्धन प्रस्थान कर रहा था। भाई सुबकती हुई दुलहिनको विदा कराके ला रहा था, बहन डकारती हुई अपने दूल्हाको विदा कर रही थी। एक ही डालके दो फूल विधिके विधानसे पृथक्-पृथक् हास्य और शोकमे लीन थे।

कली कोई जहाँ पर खिल रही थी।
वहीं एक फूल भी मुर्झा रहा था॥

—जिगर

इधर भाई दुलहिनको लेकर आया, उधर बहन निराश्रित होकर आश्रय खोजती चिरवैधव्य लिये आ गयी। भाईसे बहनकी ओर देखा न गया। वह हाय करके रह गया। उसकी युवकोचित अभिलाषाएँ सिमटकर रह गयी।

एक रोज दबे पाँव अँधेरेमें दुलहिनके कमरेमें प्रवेश किया तो दुलहिन सकुचाकर रह गयी। वह लाज और ग्लानिसे सिहर उठी। तो भी साहस बटोरकर बोली,

"बहन आँखोमें आँसू लिये फिरे, और आपकी आँखोमे काम छलके ? तुम्हें सती-तेजकी सौगन्ध, मेरे हाथ न लगाना। आत्म-विस्मृत होनेके लिए आपको बाज़ार पडा है।"

उत्तरमें दुल्हिनने नारी-कण्ठ सुना, "लाडो रानी, मैं हूँ अभागी ! भाईने वरवस मुझे धकेल भेजा है। न आती तो आत्म-हत्यापर उतारू थे।"

दुलहिन प्यारकी वातोंमे वहनका दुख भुलाने लगी। पर, वहन भाई-भाभीके इस मौन सकल्पको समझनेका प्रयत्न करती रही। पचीस वर्ष ननद भावज एक साथ सोयी, वैठी, हँसी और रोयी। मगर भाईने दुलहिन-का गोरा या काला मुँह भी न पहचाना। वहन वैधव्यको याद करके एक दिन भी न रोयी। पैतालीस वर्षकी आयुमे वहन अपने सतयुगी भाई-भावजको छोडकर स्वर्गासीन हुई।

तव दो वर्ष वाद भावजने एक पुत्र जना। जिसने युवा होकर शेरके आक्रमणपर उसकी पीठपर चढकर उसका गला दावकर मार डाला। लोगोंने सुना तो वोले, 'लव-कुश दोनो भाइयोंने कलियुगमें एक ही शरीरमें जन्म लिया है।" शायद वह युवक स्वय अथवा उसकी सन्तान अम्वाले या हिसार जिलेके किसी गाँवमे अभीतक जीवित है।

१९५० ई०

■

इज़्ज़त बड़ी या रुपया ?

दिल्लीकी एक प्रसिद्ध सर्राफेकी दुकानपर चालीस-पचास हज़ार रुपयोकी गिन्नियाँ गिनी जा रही थी कि एक उचटकर इधर-उधर हो गयी। काफी तलाश करनेपर भी नही मिली। उस दुकानपर उनका कोई गरीब रिश्तेदार भी बैठा हुआ था। सयोगकी बात कि उसके पास भी एक गिन्नी थी। गिन्नी न मिलते देख, उसने मनमें सोचा कि शायद अब तलाशी ली जायेगी। ग़रीब होनेके नाते मुझीपर शक जायेगा। मेरे पास भी गिन्नी हो सकती है, यह किसीको यकीन नही आयेगा। गिन्नी भी छीन लेंगे और बेइज़्ज़त भी करेंगे। इससे तो बेहतर यही है कि गिन्नी देकर इज्ज़त बचा ली जाये।

गरीबने यही किया। जेबमें-से गिन्नी चुपके-से निकालकर ऐसी जगह डाल दी कि खोजनेवालोको मिल गयी। गिन्नी देकर वह खुशी-खुशी अपने घर चला आया। बात आयी-गयी हुई।

दीवालीपर दावात साफ की गयी तो उसमे-से एक गिन्नी निकली। गिन्नीको दावातमें-से निकलते देख लाला साहब बड़े क्रुद्ध हुए, "रुपयोकी तो बिसात ही क्या, यहाँ गिन्नियाँ इधर-उधर रुली फिरती है, फिर भी रोकड-बहीका जमा-खर्च ठीक मिलता रहता है। हद हो गयी इस अन्धेरकी।"

रोकडिया परेशान कि यह हुआ तो हुआ क्या ? इतनी सचाई और लगनमे हिसाब रखनेपर भी यह लाछन व्यर्थमे लग रहा है। सोचते-सोचते उसे उस रोज़की घटना याद आयी। काफ़ी देर अकलमे कुश्ती लडनेपर उसे ख़याल आया कि कही वह गिन्नी उचटकर दावातमें तो नही गिर

गयी थी। तब वह गिन्नी मिली कैसे? शायद उस गरीबने अपने पासमें डालकर गुमवा दी हो। यह खयाल आते ही वह स्वयं अपनी इस मूर्खता-पर हँस पड़ा, "भला उसके पास गिन्नी कहाँसे आती? इतने बड़ोंने तो कभी गिन्नियाँ देखी हैं जो वह देखता? और शायद कहींसे पा भी ली हो तो वह इतना बुद्धू थोड़े है जो उसे यहाँ दे देता?"

जब कल्पनाने साथ नहीं दिया तो यह उलझा हुआ विचार लाला साहबके सामने पेश किया गया। लाला साहब सब समझ गये। उनका रिश्तेदार गरीब तो जरूर है, पर विश्वस्त और बावज़न है, यह वे जानते थे। अतः लाला साहब उसके पास गये और वास्तविक घटना जाननी चाही तो काफी टालमटोलके बाद उसने ठीक स्थिति समझा दी। लाला साहब गिन्नी वापस करने लगे तो बोला,

'भैया साहब, मैं अब इसे लेकर क्या करूँगा? मेरी उस वक्त आबरू रह गयी यही क्या कम है? आबरूके लिए ऐसी हजारों गिन्नियाँ कुर्बान। मेरे भाग्यमें गिन्नी होती तो यह घटना ही क्यों घटती? मुझे सन्तोष है कि मेरी बात रह गयी। रुपया तो हाथका मैल है, फिर भी इकट्ठा हो सकता है, पर इज्जत-आबरू बह जानेपर फिर वापस नहीं आती।"

उक्त घटना सुनकर हमारे एक परिचित महाशय बोले, "अजी साहब, एक इसी तरहकी घटना हम आप-बीती सुनाते हैं,

"हमारे पिताजीके एक मित्र हमारे जिलेमें रहते हैं। वे जब किसी मुक़दमेके सम्बन्धमें या सामान खरीदनेको शहर आते हैं तो हमारे यहाँ ही ठहरते हैं। एक रोज उनका पत्र आया कि 'जिस चारपाईपर मैं सोया था, अगर वहाँ लाल रंगका अँगोछा मिले तो सँभालकर रख लेना'। अँगोछा तलाश किया गया, मगर नहीं मिला। वे जाड़ोंके बिस्तरोंमें सोये थे और जाड़े खत्म होनेसे वह ऊपर टाँडपर रख दिये गये थे। सिर्फ एक अँगोछेके लिए घर-भरके इतने बिस्तरे उठाकर देखनेकी जरूरत नहीं समझी गयी।

और अँगोछा नही मिलनेकी उन्हें सूचना भिजवा दी गयी। वात आयी-गयी हुई। वे हमेगाकी तरह हमारे यहाँ आते-जाते रहे।

दिवालीपर मकानकी सफाई हुई और जाडोके विस्तरे धूपमे डाले गये तो उनमें-से लाल अँगोछा धमसे नीचे गिरा। खोलकर देखा तो दस हज़ारके नोट निकले। हम सव हैरान कि यह इतने नोट कहाँसे आये, किसने यहाँ छिपाकर रखे। सोचते-सोचते खयाल आया कि हो-न-हो यह रुपये उनके ही होगे। इस अँगोछेमें रुपये थे, इमीलिए तो उन्होंने अँगोछा तलाश करके रखनेको लिखा था, सिर्फ अँगोछेके लिए वे क्यो लिखते? मैं उनके पास रुपये लेकर गया और उलहना देते हुए बोला, "चाचाजी, आप भी खूव है, इतनी वडी रकमका तो जिक्र भी नही किया, सिर्फ अँगोछा सँभालकर रख लेनेको लिख दिया और हमारे मना लिख देनेपर भी आपने कभी इशारा तक नही किया। वताइए, कोई नौकर ले गया होता, टाँडपर चूहे काट गये होते, तो हमारा तो हमेशाको काला मुँह वना रहता।"

चचा हँसकर वोले, "भाई, जितनी वात लिखनेकी थी, वह तो लिख ही दी थी। मेरा खयाल था कि तुम समझ जाओगे कि कोई-न कोई बात जरूर है। वर्ना दो आनेके पुराने अँगोछेके लिए दो पैसेका कार्ड कौन खराव करता? और रुपयोका जिक्र जान-बूझकर इसलिए नही किया कि अगर कोई उठा ले गया होगा, तो भी तुम अपने पाससे दे जाओगे। अपनी इस असावधानीके लिए तुम्हें परेशानीमें डालना मुझे इष्ट न था।"

अनेकान्त, दिल्ली, अप्रैल १९४८

■

मनका पाप

मोण्टगुमरी जेलमे मेरा एक साधु-स्वभावी व्यक्तिसे परिचय हुआ। ब-मुश्किल पाँच फुटका कद और चेहरा मुहरा भी बस यो ही, देखकर हँसी आती थी। पर जब सुना कि ग्रेजुएट है, साहित्य, इतिहास, राजनीति और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितिका भी काफी ज्ञान रखते है, गीतापर भी विवेचन करते है, एक प्रसिद्ध नेताके पर्सनल सेक्रेटरी रहे हैं, तब उनसे परिचयमे आनेका कौतूहल प्राप्त हुआ और हर्ष है कि मेरे हृदयमें उत्तरोत्तर उनके लिए आदरके भाव जमते ही गये। हम सब उन्हे 'लालाजी' कहा करते थे।

शुरू-शुरूकी बात है, हम अभी एक-दूसरेके परिचयमें पूरे तौरमे नहीं आये थे कि लालाजीने एक पत्र बाहर भेजनेके लिए हिन्दीमें लिखा। जेलमें तीन महीनेमे एक कार्ड लिखनेको मिलता है, पर हमे जवाबी पत्र मिलने और उनको लिखकर भेजनेकी रियायत मिली हुई थी। जेलमे प्रत्येक पत्र अधिकारियो-द्वारा पढे जानेपर हमको मिलता तथा डाकमे डाला जाता था। हममें-से बहुत-से हिन्दीमें पत्र लिखते थे और जेल-अधिकारी हिन्दी न जाननेके कारण हम लोगोमें-से एक-दूसरेसे पढवा लेते थे। लालाजीने भी पत्र हिन्दीमे लिखा था, अत वह मुझसे पढवाया गया। पत्र किसी महिलाके नाम था। मै नही चाहता था कि मै उसे पढूँ। मै वैसे ही किसी दूसरेके पत्र पढना सभ्यताके विरुद्ध समझता हूँ, उसपर भी वह महिलाके नाम था। अत पहले तो मैने जरा टालमटूल की, पर यह सोचकर कि न पढूँगा तो जेलवालोको पत्रपर शक होगा, न जाने वह फिर किससे पढवायें अथवा पत्र डाकमें भेजें ही नही। मन-ही-मन पत्र पढना प्रारम्भ किया। पत्र जेल-

अधिकारियोंको सुनाकर पढनेकी ज़रूरत नही थी। वे तो केवल हमसे इतना विश्वास चाहते थे कि पत्रमे ऐसी-वैसी गवर्नमेण्ट या जेलके खिलाफ वात लिखी न चली जाये और पत्रमें ऐसी कोई वात नही है, यह विश्वास दिलानेपर वे सन्तोष कर लेते थे। और सच वात तो यह है कि हमने शायद ही विश्वासघात किया हो। यद्यपि पत्र जोरसे पढनेका उनकी ओरसे आदेश नही था, पर मन-ही-मन समूचे पत्र पढनेका स्वाग तो खेलना पडता ही था, ताकि उनका विश्वास वना रहे। लालाजीने किसी महिलाको सम्बोधित करके आगे लिखा था, "तुम अव जीवन पर्यन्त ब्रह्मचर्य पालन करनेकी भावना रखती हो, यह पटकर मुझे हर्ष हुआ।" इससे आगे पत्र पढना मेरे अन्त करणने अस्वीकृत कर दिया। इतनी गोपनीय वात पढ लेना और वह भी ऐसे व्यक्तिकी, जिसे मैं आदरकी दृष्टिसे देखता हूँ, मेरे कायर मनसे नामुमकिन था। पत्रमें राज़ी-खुशीके अलावा और कुछ नही है, यह कहकर मैंने वह पत्र लेटरवक्समें डालनेको दे दिया।

पत्र तो चला गया, पर मेरे पापी मनमें हलचल मचा गया। यह पत्र लालाजीने अपनी स्त्री, वहन या पुत्री आदिमें-से किसको लिखा, कुछ समझमें नही आया, क्योंकि नामसे पहले केवल 'प्रिय' लिखा हुआ था और यह विशेषण स्त्री, वहन और पुत्री सबके लिए इस्तेमाल हो सकता था। अतः यह समझमें न आया कि यह लिखा किसको है ? फिर भी है तो कोई लालाजीकी आत्मीय न ? तव क्या लालाजी-जैसे देवता पुरुषके घरमें भी अभीतक व्यभिचारका ताण्डव था ? हृदयमें एक आँधी सी उठ खडी हुई। मैंने ऐसा पत्र क्यो पढा, जिसके पढनेसे मेरे हृदयमें किसीके प्रति सद्भावनाएँ कम हो। मुझे काफी पश्चात्ताप-सा हुआ, पर मेरे छिद्रान्वेषी कलुषित हृदयने यह वात मजबूतीसे पकड ली। जितना ही मैं उसे भुलानेका प्रयत्न करता, लालाजीको देखते ही वह वात उतनी ही हरी हो जाती।

आठ-नौ माहके वादकी वात है, वैरिकमें बन्द हो जानेपर रात्रिको हस्बदस्तूर मेरे स्थानपर गोष्ठी जमी हुई थी। उस निठल्ले वक्तमें अच्छी-

बुरी दुनिया-भरकी सभी बातें होती थी। मनोरजन हो रहा था कि मैंने दूर बैठे हुए एक साथीकी ओर इशारा करते हुए हँसानेकी नीयतसे कहा, "देखो, यह अपने मनमें सोचता होगा कि—ये लोग भी कैसे · ·।" वाक्य मेरे मुँहसे पूरा निकला भी न था कि लालाजीने मुझसे धीरेसे कहा, "देखो, हमारे बारेमें कोई कुछ सोचे या न सोचे, पर हमें दूसरेके मनमें क्या है, यह नही सोचना चाहिए। हमारे लिए सोचनेको और बहुत-सी बातें हैं। हमारे बारेमें कोई क्या सोचता है और क्या कहता है, इसकी फाइल हम क्यो बनायें ? अपने जीवन-पथमे हमें बहुत-सी उपयोगी बातें सोचनी पडती है। फिर क्यो न हम वही बातें सोचें जो हमे अपने लक्ष्य तक निष्कण्टक पहुँचा दें। हमे तनिक भी हलके बना देनेवाले विचार अपने पास भी नही फटकने देने चाहिए, और तुमसे तो मैं ऐसी मनोवृत्तिकी कतई आशा नही रखता था।"

लालाजीने अपने मनकी बात किन शब्दोमे और किस ढगसे कही, यह तो अब याद नही, पर भाव यही थे। मेरे ऊपर घडो पानी पड गया। फिर उन्होने ज़रा औरोको भी सुनी जाने लायक़ आवाज़मे कहा, "देखो, बुरी बान पडते देर नही लगती। प्रारम्भमे नदीका उद्गम अत्यन्त सूक्ष्म होता है, पर धीरे-धीरे वही महान् रूप धारण कर लेता है। वटके वृक्षका बीज भी शुरूमे बहुत छोटा होता है, पर समय पाकर वही विशाल बन जाता है। साँपका जरा-सा विष मनुष्यके एक रोम-छिद्रमें प्रवेश होकर सारे शरीरमे फैल जाता है, उसी तरह पाप-वासनाएँ, खोटी आदतें, कलुषित भावनाएँ प्रारम्भमे प्लेगके कीडेकी तरह दृष्टि-अगोचर होती है। यह भेड बनकर आती है पर शरीरमें प्रवेश करते ही रौद्ररूप बना लेती है। व्याघ्रसे बच जाना सरल, पर गो-मुखी व्याघ्रसे बचना ही बुद्धिमत्ता है। पाप भी गो-मुखी व्याघ्र है। साँपके चिकनेपन और आगकी चमकसे जैसे बालक आकर्षित होता है, वैसे ही प्रारम्भमें इनका सौम्यरूप देखकर मनुष्य भुलावेमे आ जाता है। बहुत ही संयम और सतर्कतासे रहा जाये तभी

इनके विषैले प्रभावसे बचा जा सकता है।" कुछ ऐसे ही शब्दोमे लालाजी-ने मुझ छिद्रान्वेषीको समझाते हुए आगे कहा,

"मुझमें भी अनेक खोटी आदतें न जाने कब और कहाँसे चिमट गयी हैं। हम अपनी ऐसी बहुत-सी कुटेवोंको भी नही जान पाते, जिनके कारण हमारे मित्र, पडोसी और कुटुम्बी हमसे तग रहते है, जो हमें जनताकी दृष्टिमें हलका, उपहासयोग्य और घृणित बनाती है। हम जिन्हें हार समझ-कर चिमटाये रहते हैं, वह हमारे काट खानेको साँप होती हैं। कहनेको तो देखिए बहुत मामूली-सी आदत है, परन्तु मुझे इसने एक बार बहुत ही नीचा दिखाया। आपने नोट किया होगा कि मै बातचीतके दौरानमें—'समझे कि नहीं,' अकमर कहता हूँ। यद्यपि मेरा यह तकियाकलाम अब बहुत कुछ कम हो गया है, फिर भी पूरी तरहसे अभी नहीं छूटा है। मैं एक बार महात्मा गाँधीजीसे मिलने गया। दस मिनिटकी बात-चीतमें मैंने दसों बार 'समझे कि नही' प्रयोग किया और महात्माजी भी 'जी समझ रहा हूँ' उत्तरमें कहते रहे। मुझे अपनी इस उद्दण्डताका तनिक भी ज्ञान न हुआ। महात्माजीसे मिलकर बाहर आये तो साथीने व्यग्य करते हुए कहा, "ओ हो! अब तो आप महात्माजीको भी समझानेकी क्षमता रखते हैं।" मैंने अचकचाकर पूछा तो उन्होने मेरे तकियाकलामकी बात कही। उस समय मुझे कितनी लज्जाका अनुभव हुआ, मैं आपको बता नही सकता।"

फिर बोले, "देखो, दुनिया हमें भला कहती है, इसीसे अपनेको भला समझकर हमे भूल नही जाना चाहिए। दुनियाका क्या है? भलेको बुरा और बुरेको भला कहते हुए उसका बिगडता क्या है? पतिव्रता सीताको वह कलक लगा सकती है और वेश्याको वह मगलामुखी कह सकती है। इसलिए हमे अन्तश्चक्षुसे देखना चाहिए कि हम क्या है? कही हम आपेमें भूलकर स्वय तो धोखा नही खा रहे हैं। दुनिया हमारा आदर करती है, केवल इसीलिए तो हमें महात्माके पदपर नही बैठ जाना चाहिए। महात्मा पदपर तो हम तभी आसीन हो सकेंगे, जब अन्दर छिपे हुए चोरको

निकाल बाहर कर सकेंगे। दुनिया हमारे अन्दरके अवगुणोको चाहे न देख सके, पर यह चैतन्य-स्वरूप ज्ञानमयी आत्मा तो सब कुछ देखती है। यह तो उस छिपी हुई ग्लानिके आगे नही पनप सकती। इसके विकासके लिए उस दुर्गन्धको निकालना अत्यन्त आवश्यक है।

'मुझे ही देखो न! मै रोज़ाना ज्ञानकी बातें बघारता हूँ, पर जितना कहता हूँ, उसका सौवां हिस्सा भी अपनेको नही बना पाता। मुझसे तो मेरी पत्नी ही हजार दरजे श्रेष्ठ है। इसी हफ्तेमें उसके दोनो भाई भरी जवानीमें मर गये। एक बी० ए० की और दूसरा वैद्यककी अन्तिम परीक्षा देकर घर आया था, सात रोजमें मामूली बुखारमें दोनो चल बसे। मैंने सुना तो रुलायी आ गयी, पर पत्नीका पत्र आया है, जिसके पढनेसे मालूम होता है वह ससारकी मोह-मायासे बहुत ऊँची हो गयी है।"

कहते हुए उनका गला भर आया, उन्होने वह पत्र मेरे सामने डाल दिया। पत्रमे भाइयोकी मृत्युके बारेमे दिलासा देनेके बाद लिखा था "जीवनधन, समझते हो, मै आपका जेल-जीवन, कृश शरीर और वह फटे-पुराने कपडे देखकर घबरा जाऊँगी, इसीसे तो मुझे जेलमें दर्शनार्थ आनेकी आपने अनुमति नही दी। आपकी अनुमति नही है तब नही आऊँगी। पर, प्राणनाथ, मैं स्वय वीर न सही, वीर-पत्नी तो हूँ। जिसका पति देश-सेवाके लिए जेलको यन्त्रणाएँ सह रहा है, वह घबरायेगी क्यों? उसके लिए तो मुख ऊँचा करनेका समय ही अब आया है। जहाँ देश-सेवाके लिए बिलखते बच्चोको छोडकर नारियाँ जेलमे जा रही है, वहाँ आप मुझे क्या इतनी गयी-बीती समझते हैं कि मैं स्वय तो जेल न गयी, पर अपने पतिके जेल-प्रवासपर भी दु खी रहूँगी?" आगे लिखा था।

"सर्वस्व, सुना है गाधी-अर्विन समझौता हो गया तो सब राजनैतिक कैदी छोड दिये जायेंगे। तब आप भी जेल-मुक्त होगे। इस उपलक्ष्यमें क्या आप मुझे एक उपहार देंगे? मै आपसे इस अवसरपर दामन फैलाकर ब्रह्मचर्यकी भीख माँगती हूँ। जहाँ आपने देशके लिए इतना कष्ट

सहा, वहाँ मेरे लिए इतना त्याग और सही। भगवान्‌की दयासे बाल-बच्चे भी हैं अब क्यो अधिक गुलाम उत्पन्न किये जायें। मेरी आन्तरिक अभि-लाषा है कि हम अब ब्रह्मचर्यसे रहकर लोक-सेवामे हाथ बटायें। क्या आप जेलसे ब्रह्मचर्य व्रत लेकर आयेंगे ? प्राणनाथ, मेरे मनकी अन्तिम साध पूरी करो ।"

पत्र आगे न पढा गया। जैसे कलेजेमें किसीने घूँसा मार दिया। अरे छिद्रान्वेषी पापी मन, इसी साध्वीके प्रति तुझमें मैल भरा हुआ था! प्रायश्चित्तस्वरूप माँ कहकर उसे मन-ही-मन प्रणाम किया।

वीर, दिल्ली, १३ जनवरी १९४० ई०

■

विहारीलाल

भाई विहारीलाल[1] उन बलवटेरोमें-से थे, जो सन् ३०मे गाँधीकी आँधीमे उखडकर किनकिलाबका नारा लगाते हुए मोण्टगुमरी जेलमें आ पडे थे। मै भी उन दिनो उसी खैराती होटलमें रोटियाँ तोड रहा था। यारोंसे मालूम हुआ कि दिल्लीसे एक और जत्था आया है और उनके साथ एक बुद्धू भी आ फँसे है। मनुष्यका स्वभाव प्राय. विनोदी होता है। इस ससुराल-प्रवासमे एक-न-एक विनोदी जीव फँसा ही रहता था। दस-पन्द्रह रोजमे कुछ इनका अभाव खटका ही था, कि भगवान्ने जेलका फाटक खोल मनकी मुराद पूरी की।

वान बटनेको बैठे ही थे कि यारोके मजमे-मे विहारीलाल भी आ धमके। शक्लो-शवाहत देखने काबिल, अल्लाह मियाँने खुद अपने हाथोसे शायद इन्हे गढा था। चाल इनकी चीनी औरतसे भी शोखी-भरी। हँसीमें अजीव बाँकपन। आँख अलबत्ता छोटी, गोल और चुन्धी थी, पर हँसनेमें कुछ ऐसी खिलती थी, कि देखते बनती थी। नारियल-जैसे सिरपर नहा-धोकर जब आप तेल चुपड लेते थे, तो मक्खियाँ मुबारकबाद देने आती थी। लोग उन्हें ठेकेदार कहते थे, परन्तु मैंने उनका नाम मिस छछूँदर फिट किया। अपना अनोखा नाम-सस्कार होते देख विहारीलाल खिल-खिलाकर हँस पडे। यारोका उत्साह बढ गया। उँगली पकडते ही

---

१ विहारीलाल विनोदी स्वभावके थे। उनसे इसी तरहका विनोदी व्यवहार था। अत उसी विनोदी ढगपर यह घटना लिखी गयी थी और यह हसमें (शायद सन् ३३ में) प्रकाशित हुई थी। पाठकोंको इस स्तम्भमे लिखनेका यह ढग शायद अखरेगा, इसके लिए मैं मजबूर हूँ, क्योंकि जो घटना जैसी हो, उसे वैसा ही भाषामें लिखना मुझे उपयुक्त मालूम हुआ।

पहुँचा पकडनेकी दावत मिली। फिर तो शनै-शनै तीतर, कबूतर, बटेर, गिरगट, मेंढक आदि कितने ही लाड-प्यारके नामोसे सम्बोधित होने लगे, और तारीफ तो यह है कि उपर्युक्त नाम सुनकर उन्हें एक प्रकारका आह्लाद ही होता था। उस समय तो इन सब उपनामोका एक श्लोक भी बन गया था, पर अब अकलपर जोर देनेपर भी नही सूझ पडता और नया लिखनेमे असलियतका लुत्फ जाता है।

गाँधी-अर्विन समझौतेमे सारे बलबटेर उड गये, बिहारीलाल फँसे रह गये। खुशक़िस्मतीसे उनके सत्सगका लाभ उठानेका मुझे भी दो-तीन यारोके साथ रहनेका मौका मिल गया। भीड छट जानेपर असली जौहर देखनेका अवसर मिला। प्रात काल उठे और हज़रत सन्ध्यापर बैठ गये, कितने ही उपसर्ग किये जाते, पर टससे-मस न होते, अलबत्ता मुसकराते जरूर रहते। हज़रत सन्ध्यापर-से उठें, कि यार लोग उनके हिस्सेकी दाल-तरकारी पहले ही चट कर जाते, मगर आप रूखी रोटी ही टमर-टमर निगल जाते और इस अन्दाज़से, गोया नूरजहाँबेगम नाश्ता कर रही हो। रोटी ठूँस लेनेके बाद सबसे पहले अपना बान बट लेते, फिर बारी-बारीसे सबका हाथ बटाते। दोपहरको दलिया और चने आते, तो हज़रतकी नीयत सबके हिस्सेको चट कर जानेकी रहती, पर यह दाँव रोज़ नही चल पाता। यही उनकी दैनिक-चर्या थी।

अब हमारी भलमनसाहत मुलाहिज़ा फरमाइए। हज़रतके सोते हुए कानमे पानी डाल देना, मुँहपर स्याही उँडेल देना, पाउडर लगाकर भवें साफ़ कर देना, पायजामेका इज़ारबन्द काट देना, कपडे भिगो देना, बिस्तरे छिपा देना, चलते हुए खोपडीपर चपत कस देना, एक-दूसरेको धक्का दे देना, अपने पास बुलाकर पहले मीठी-मीठी बातें करना, फिर दुतकार देना, और उनके कुढनेपर खिलखिलाकर हँस पडना, यह हमारा दैनिक कृत्य था।

, दरयाफ्त करनेपर मालूम हुआ कि आप मेरठ ज़िलेके किसी गाँवमे भंग वगैरहकी ठेकेदारी करते थे, इसीलिए आप ठेकेदार सम्बोधनपर बडे अधिकारपूर्वक बोलते थे। पिकेटिङ्के ज़मानेमें आपके यहाँ भी धरना दिया गया। एक रोज़ रातको दो स्वयसेवक आये और इनसे भोजन देने और रातको वही पड रहनेके लिए प्रार्थना करने लगे। तब आपने फरमाया—"ससुरो, हमारे यहाँ ही पकेटिङ् करो और हमीसे रोटी और सोनेकी जगह माँगो! चलो निकलो यहाँसे। तुम्हारी ऐसी-तैसी!"

स्वयंसेवकोने भविष्यमें धरना न देनेका विश्वास दिलाया, तब आपने प्रेमपूर्वक भोजन बनाकर खिलाया और उन्हें अपनी चारपाई सोनेको देकर स्वय ज़मीनपर पड रहे। सवेरा होते ही स्वयसेवक उठे और बडे इत्मीनानसे आपकी ही दुकानपर धरना देने बैठ गये। इस कलियुगमें उपकार-की ऐसी मिट्टी पलीद होते देख आपको वैराग्य-सा हो गया और दुकान बन्द करके आप दिल्ली भाग गये और यहीसे मोण्टगुमरी—जिसे हम खैराती होटल या ससुराल कहा करते थे—फेंक दिये गये।

देहाती होनेसे आपकी भाषा भी बडी ऊबड-खाबड थी। कैंचीको कँच्ची, सिविलसर्जनको सलेटमर्जन, वालिण्टियरको बलवटेर, इन्किलाबको किनकलाब या ऐनकलाव, मिठाईको मठियाई, पिकेटिङ्को पकेटिङ् कहकर हमारे पेटोमें बल डालते रहते थे।

स्वराज्य क्या है, यह उन्हें मालूम न था। राष्ट्रीय-सग्राम क्यो छिडा हुआ है, जेल लोग किसलिए जा रहे हैं, गाँधी किस बलाका नाम है, इसका उनके सीगको भी पता न था, और सच बात तो यह है कि उनके मौजी दिमागमें इन सब बातोके रखनेकी गुजाइश भी न थी।

उनकी दिव्यदृष्टिमें धर्मोमें श्रेष्ठ धर्म आर्य-समाज और शास्त्रोमे शास्त्र सत्यार्थप्रकाश था। इन्हीकी अकसर दुहाई देते थे, बात-बातमें इन्हीका हवाला देते थे। अपने हस्ताक्षर भी कर लेते थे, यह तो मुझे इस समय याद नहीं,

पर सत्यार्थप्रकाश उन्हे कण्ठस्थ था। ज़रा देरसे सोकर उठे, और उन्होने, इसे उक्त ग्रन्थराजसे कुटेव सिद्ध कर डाला। खाना खाते समय ज़रा हँसे नही कि सत्यार्थप्रकाशका हण्टर पडनेमे चूक नही होती। ज़रा मज़ाक किया और उन्होने उसे व्यभिचार प्रमाणित किया। गरज़ यह है कि सोते-उठते, खाते-पीते, उनके इस वेमौसमी उपदेश पीते-पीते हमारे पेट बढ गये। पर उन्हें रहम न आया। रात्रिको ज़रा साँस लेनेका अवकाश मिलता, जी चाहता कि तफरीहकी बातें करें कि आप बीचमें कूद पडते। वही अपनी राम-कहानी। फिजूल बैठे क्या करते हो, सन्ध्या क्यो नही कर लेते। सन्ध्या नही आती है, तो आओ भजन ही गावें, और लगते फिर पचम स्वरमे आलापने।

यार लोग तो इस मौकेके लिए उधार खाये बैठे ही रहते थे। एक कहता, "बडे भाईकी स्वर-लहरी तो देखिए, कट्टो गिलहरी भी झेंप जाये।" दूसरा कहता, "अमाँ स्वरको क्या, गलेके लोचको देखिए, गोया बुढिया नानी चक्की पीस रही हो।" कोई कहता, "अजी, तरन्नुम तो देखिए, वैसाखनन्दन भी ची वोले।" कोई कहता, "शाइरी तो मुलाहिजा फरमाइए, तुलसी, सूर स्वर्गमे बैठे अपना सिर धुन रहे होगे।"

यारोके वढावेमे उन्हें कुछ अजीव लुत्फ आता था। यही गायन फिर नृत्यमें परिवर्तित हो जाता। यह नाच भारतकी कौन-सी प्राचीन-नृत्य-कलाका द्योतक है, यह तो हम नही जानते थे, किन्तु हम इसे मेढक-नृत्य कहते थे।

छह माहके वाद उन्हें उस खैराती होटलसे धक्के मिले, तो मुँह लटकाये हुए सीधे दिल्ली आये और यही हवन-सामग्री और भजनोकी किताबें फेरीमे बेचकर चैनकी वशी वजाने लगे।

विहारीलालके दस माह वाद हम भी दुत्कार दिये गये। अपना-सा मुँह लेकर हम भी दिल्ली चले आये। सिरपर झेंप सवार थी, कि कोई

देख न ले किसीको खबर तक न की। अँधेरे-अँधेरेमें घर पहुँचे
जाने कौन शैतान कानो-कान कह आया कि आवारा मालपर चील
मजमा टूट पडा। इनमे अपने-पराये, सगे-सम्बन्धी, यार-दोस्त
पहले प्रश्नोकी बौछार हुई, फिर सहानुभूति प्रदर्शित की गयी, फिर
के पुल बाँधे गये, जिन्हें सुनकर मेरी छाती मारे आत्म-गौरवके फू
थी, जी चाहा कि कह दूँ, कि जबतक स्वराज्य न मिलेगा,
तक न पीऊँगा, और चल दूँ सीधा अभी जेलको, पर मनोभ
कर गया।

आत्म-प्रशसा सुननेसे अभी जी भरा भी न था कि उपदेशोंकी
चपतें मुँहपर पडने लगी। एक बोले, "दो सालमें शरीरका ढेर क
घर बरबाद हो गया सो अलग, क्या आया हाथमें ? मुफ्तमें र
कर लिया।"

दूसरे बोले, "खैर, अब जो हुआ सो हुआ, अब आइन्दा
कान पकड लो। तुम्हारे एकके न होनेसे कुछ बनता-बिगडता नः

तीसरे अन्यत्र नजदीकी बोले, "भाई तुम्हारा क्या बिगडा
जेलमें जा बैठे, हमें न देखो रोते-रोते आँखे सुजा ली और काया
गयी, सो मुफ्तमें।"

इसी प्रकार उतार-चढावकी कई रोज तक बातें सुननेको
पाँच-छह रोज बाद बिहारीलालने सुना, तो दौडे हुए आये। देखते
बाग-बाग हो गया। मनमें सोचा जेलकी हरकतोंको दुहराकर
शरमिन्दा जरूर करेगा। मगर बिहारीलाल तो बिहारीलाल थे। व
हुए हाथीकी तरह झूम रहे थे, चलते समय मेरे आगे साठ रुपये
रख दिये। मैंने हैरानीसे पूछा, "बडे भाई, यह क्या ?" व
"सवादो सालमें घर आया है, यहाँ क्या खत्ती गढी हुई है,
खायेगा। आठ-नव महीनेमें यही जोड पाया हूँ, यह तेरे निमित्तके

मेरे इनकार करनेपर बोला, "दिल्लीवाली शेखी तो रहने दे। डर मत, मै माँगूँगा नहीं, तेरे लिए ही जोडकर रखे हैं।"

न मालूम अपनी देहाती ज़बानमे बडे भाई क्या-क्या बकते रहे, पर मैं उस समय अपने मनमे रो रहा था। बडी मुश्किलसे उनके रुपये लौटाये। नोट उन्होने अण्टीमें लगा लिये, पर जिस उमंगसे वह मेरे पास आये थे, उस उमगसे वापस नही गये। उनकी इस उदासीका कारण स्पष्ट था, पर मैं विवश था।

मुसीबतज़दासे मिलने, सहानुभूति प्रदर्शित करने तो बहुत आते है, पर बिहारीलाल जैसे बिरले ही आते हैं। न मालूम अब बिहारीलाल कहाँ हैं। मुद्दतोसे दर्शनो तकको भटक गया। आज पुरानी स्मृति उभर आनेपर दिलकी भडास काग़ज़पर ही बखेरकर पूरी कर रहा हूँ।

हंस, काशी, १९३२ ई०

■

भाई भाई पै न्योछावर

मोण्टगुमरी जेलमें हमारी बैरिकपर एक पीली वर्दीवाला मुसलमान नम्बरदार तैनात था। वह पाँचो वक्त नमाज़ पढता और बाक़ी टाइममें कुरान। शक्लो-शवाहतसे भलमनसाहत टपकती थी और सचमुच था भी वह ऐसा ही। उम्र लगभग ५०-'५५ की होगी। २० सालकी सजा पूरी करनेमें ५-६ महीने बाकी रहे थे। उसे देखकर कभी खयाल आता कि न जाने किस भलेमानसने इस ईसामसीहकी भेडको दूसरेके भुलावेमें क़ैद किया है? इस बछियाके ताऊसे क्या गुनाह बना होगा? और कभी खयाल आता—अजी, ऐसे ही भोली-भाली शक्लवाले क़हर ढाते है। इन जैसोंका वह आलम है कि 'हो जायें खून लाखों, लेकिन लहू न निकले', कुछ-न-कुछ हरकत की होगी तभी तो हज़रत धर लिये गये, वर्ना किसका सिर फिरा है जो नमाज अदा करते और कुरान पढते हुए इन्हें पकडता? एक बार उससे पूछा भी तो हँसकर टाल दिया, बताया नही।

उसी जेलमें उन दिनों उसका छोटा भाई भी क़ैद था। अनेक जेलोंमें पृथक्-पृथक् रहते हुए सौभाग्यसे वे दोनों वहाँ मिल गये थे। दोनो एक-दूसरेसे बहुत फासलेपर रहते थे, पर कभी-कभी मिलन हो जाता था। एक दिन मैंने छोटे भाईसे पूछा तो वह बोला, "मेरी नालायकीसे यह सजा भुगत रहा है। मैंने एक आदमीको कत्ल कर दिया था, जब पुलिस मेरी तलाशमें आयी तो इसने खुद कुसूर तस्लीम कर लिया। भाईको फँसते देख मैंने अपना गुनाह कुबूल कर लिया। पुलिसने मुझे भी थाम लिया। मगर यह न माना और अदालतमें भी अपनेको ही मुजरिम साबित करनेकी कोशिश की। मैं अपनेको कातिल कहता था और यह अपनेको। आखिर हम दोनो

को बीस-बीस सालकी सज़ा हुई ।"

मैंने पूछा, "तुम दोनोंने अपराध क्यों स्वीकार किया ? एकने मजूर कर लिया था तो दूसरा चुप रहता ताकि वह बीबी-बच्चोंकी परवरिश तो कर पाता ।"

वह बोला, "बाबू ! मैं तो गुनहगार था ही, इसलिए भाईको फँसते देख मैं कैसे चुप रहता ? मैंने खुद अपना फेल तस्लीम कर लिया ताकि बेकुसूर भाई बच जाये । मगर वह न माना, बोला, "जब छोटा भाई फाँसी चढ जायेगा तब मैं ही जीकर क्या करूँगा ?"

मैंने कहा, "उसे अपनी स्त्रीका तरस न आया, उसके रोकेसे भी न रुका ।"

छोटा भाई बोला, "बाबू ! औरत तो पराये घरकी होती है, उसके रोकनेसे वह क्या रुकता ? भाई फिर भी भाई है । ससारकी सब नेमतें मयस्सर हो सकती हैं, लेकिन सगा भाई कहाँ मिल पाता है ? उसके इसी खयालने उसे मजबूर कर दिया । बाबू ! यह मेरा बडा भाई ऐसा शील स्वभाव है कि फरिस्तोंमें भी मिलना मुश्किल है ।"

अशिक्षित और जगली भी इतनी भावुकता और जीवनमें प्यार लिये फिरते हैं, यह पहली बार मुझे अनुभव हुआ ।

१९५० ई०

■

सुन्दर हलालखोरी

वह जातिकी हलालखोरी (भगिन) है। आयु ५० के लगभग और नाम है 'सुन्दर'। दिल्लीमे रहते हुए मुझे ३० वर्ष हुए, तभीसे वह मुझे जानती है। मुझे बचपनमे देखा है और आयुमें मांके बराबर है, इसलिए वह हमेशा मेरा आधा नाम लेकर बोलती है और वही मुझे अच्छा मालूम होता है और अब जब कभी वह लाड-प्यार या बडप्पनके खयालसे मेरा पूरा नाम लेती है तो मुझे वह अच्छा मालूम नही होता, और मैं कह देता हूँ, पहला ही नाम ठीक है, वह हँसने लगती है।

जब छोटा था, तब कहती, "मेरा जुग्या भगवान् करे खूब कमाये।" जब कमाने लगा तो कहने लगी, "मेरे जुग्याका ब्याह हो!" ब्याह हुआ तो बच्चेके लिए दुआएँ माँगने लगी। बच्चा भी हो गया, पर उसकी दुआओकी सीमा नही, बढती ही जा रही है।

वह भगिन है, जिजमानोकी मगल-कामना करना उसका काम है। इन्ही बातोके एवजमें तो हम लोगोके यहांसे उनका भरण-पोषण होता है। यह खयाल आम लोगोका है और कह नहीं सकता, मेरा भी पहले यह खयाल था, या नही।

जेल चला गया तो मांके रोजानाकी तरह रोटी और माहवारी पैसे देनेपर लेनेसे इनकार कर दिया। मांने कहा, "जी! तुम अपना मेहनताना लो, मुझे कोई भूखी-नगी थोडे ही छोड गया है!" सुन्दर हलालखोरी आंखोमे आंसू भरकर बोली, "वह आयेगा, तब उसीके हाथसे लूँगी।" मेरे हाथमे या माके हाथमे लेनेकी बात नही थी। बात दरअस्ल

उसके मनमें यह थी कि जिसका बेटा जेल चला गया है, उससे मेहनताना लेती क्या अच्छी लगूँगी ?

जेलसे आया, तब मांने सुन्दर हलालखोरीकी बात कही। साथ ही यह भी कहा कि मकान-मालिकने (जो अपने जातिके ही थे) तेरे जाते ही किराया बढा दिया था।

मकान-मालिककी बात अनसुनी-सी करके सुन्दर हलालखोरीके इस त्यागकी बात कई बार सुनी। सोचा, मेरे पास क्या है, जो उसे इस मेहरबानीकी एवजमें दे सकूँ।

जो बन सका वह दिया, तो माथेपर तीन बार चढाया, जमीनको चुचकारा। दामन फैलाकर दुआएँ दी और कहा, "मुबारक आजका दिन, जो अपने जुध्याके हाथमे मुझे यह लेना नसीब हुआ।"

मेरा व्याह हुआ तो मांने तोहल दी। तोहल लेकर फूली न समायी। पहनकर सारे मुहल्लेको दिखायी, "मेरे जुध्याकी ससुरालसे यह तोहल मेरे वास्ते आयी है।"

जिस मकानमें वह कमाने आती थी, वह मैंने बदल लिया है, फिर भी जब कभी मिल जाती तो देखकर हरी हो जाती है। मैं सोचता हूँ, इन अछूतोमे भी इतना त्याग, इतना स्नेह कहाँसे आया ? कही हम उच्च कहलानेवालोके गुण तो इन्होने नही छीन लिये ?

वीर, दिल्ली, ४ मई १९४० ई०

■

एक चोरकी आत्म-कथा[1]

जवानीका आलम, मद-भरी आँखें, चेहरेपर दो चुल्लू खून, सुता हुआ कसरती जिस्म और उसपर पुश्तैनी पेशा चोरी। न कमानेकी फिक्र, न नौकरीकी चिन्ता, न घाटेका डर। आठो पहर चैनकी वसी बजती थी, अल्हड जवानी आदमीको भुनगा समझती थी। काँधेपर लाठी लेकर चलता तो वे पिये दो बोतलका नशा रहता! जिस घरमें घुस जाता खाली हाथ न लौटता। नाकामयाबी किसे कहते है, यह कभी न जाना। हमारी कौमके लोग पुलिसके फन्देमे फँसते तो मैं हँसता और कहता इन गाव-दियोंको हमारी दिलेर कौममे पैदा होनेकी जरूरत भी क्या थी ?

माँ लाडसे कहती, "मेरे बेटेके तो पाँवसे लच्छमी लगी रहती है, बुजुर्गोंकी आन चली आती है इसलिए मजबूरन इधर-उधर जाता है वर्ना दौलतमन्द तो यहाँ आकर इसकी जूतियोंमें दौलत पटक जायें।"

बीवी कहती, "मेरा शौहर तो बादशाह है, यह काम तो तफरीहन करता है। बादशाह जगलोंमें शिकारको जाते है, मेरा दूल्हा शहरमें शिकार करता है। बादशाह और मेरे शौहरमें कुछ फर्क थोडे ही है ?"

एक रोज़की बात, चाँद अपने पूरे शबाबपर था। अठखेलियाँ करता हुआ, इश्क़का दम भरता हुआ, सितारोंको गुदगुदाता हुआ, फूलोंको मुसकराता हुआ, बच्चोंको सुखकी नीद सुलाता हुआ, किसीकी दुआएँ लेता हुआ, किसीको तसल्ली देता हुआ और किसीको मचलता हुआ देखकर,

---

[1] एक बार रेलमें सफर करते हुए मेरे एक साथीकी एक बूढे बूचे आदमीसे भेट हुई। साथीने ताज्जुबसे पूछा, "कहिए हजरत! ये कान किसीने उखाड लिये है या अल्लाहमियाँ बनाते हुए ही भूल गये ?" उस देहाती बूचेने बहुत हील-हुज्जतके बाद जो घटना बयान की, वह ज्योंकी त्यों केवल अपनी भाषाका जामा पहनाकर पेश कर रहा हूँ। —गोयलीय

किसीको तडपता हुआ देखकर एक अजीब बांकपनके साथ वह गुलशने-आसमानपर सैर कर रहा था ।

उसकी वोह फबन, वोह निखार, वोह शोख़ी-भरी चाल मेरे कलेजेमें उतर गयी । हाथमें लाठी ली और चल दिया गाँवसे बाहर चाँदके साथ-साथ । हम चोरोंके लिए अँधेरी रात कीमती होती हैं । चांदनी रातमें घरसे बाहर नहीं निकलते । इसलिए घरसे चलते वक्त मांने हैरानीसे देखा, बीवीने आंखो-ही-आंखोमे कहा, "क्या आज पिये हुए हो, देखते नही चांदनी छिटकी हुई है, ऐसेमें भी क्या कभी बाहर जाना होता है ?" मैंने कहा, "मै कमाईको थोडे ही जाता हूँ, यूँ ही ज़रा गांवके बाहर सैर कर आऊँ, अभी आया ज़रा-सी देरमें ।"

एक अँगडाई ली और चल दिया गांवसे बाहर चाँदका खुला रूप जी भरकर देखनेको । वोह सुनसान रात, वोह थकी मांदी राह, वोह सोया हुआ रेत, वे खडे हुए पेड, मुझे आगे बढनेसे न रोक सके । मै आगे बढता ही गया, मैं चुपचाप चलता ही गया । यकायक रास्तेसे ज़रा-सी दूरीपर कुछ देखकर ठिठका और पास जाकर देखा तो हैरान रह गया ।

उस सुनसान वीरान मैदानमें एक साफ सुथरी जगहमें सफेद चादर बिछाये एक देहाती नौजवान अपनी हसीना बीवीके साथ बेमलाल सोया हुआ था । जैसे शेर अपनी मादाके साथ बेख़ौफ लेटा हुआ हो । शायद वह अपनी बीवीको कही ले जा रहा था और रास्तेमें रात हो जानेसे बीवीके थक जानेकी वजहसे वही आराम करने लगा था ।

दिल चाहता था कि इसी तरह उस जोडेको देखता रहूँ । इस उघडी शराबको आंखोसे पीता रहूँ । उस हुस्नो-इश्ककी ज़ाहिरा तसवीरको जी चाहता था, किसीको खबर न होने दूँ और कलेजेमें छिपाकर रख लूँ । वोह अल्हड जवानी, वोह बनावटसे दूर देहाती हुस्न और उसपर यह क़यामत कि उस सन्नाटेके आलममें किस शानसे सोये हुए है, न किसीका खौफ, न किसीकी परवाह ।

अफसोस ! वोह नशा, वोह बेखुदी कायम न रही ! नाज़नीके जिस्म-पर चाँदीके जेवर देखते ही पुश्तैनी आदतने तुर्शीका काम किया। सब नशा हिरन हो गया। सोचा, क्यों न लगे हाथ इसके जेवर उतार लूँ, सैर भी की और कमाई भी। खयालको अमली जामा पहनाया गया। जिस्म-पर जो दो-चार चाँदीके ज़ेवर थे, उतारते देर न लगी। नाककी नथ उता-रनेको ज्यों ही मैंने हाथ बढाया कि उस नाजनीने मेरी कलाई पकड ली और बोली, "भले मानस ! तुझे मर्द किसने बनाया, किसी जोडेको सोते हुए चुपचाप देखते हुए तुझे शर्म न आयी और उसपर भी इतनी हिम्मत कि ज़ेवर भी उतार डाले ! मेरी भलमनसाहत तो देख, कि चुपचाप मैं सब देखती रही और तुझे मना न किया ! अब तेरी इतनी जुरअत कि मेरे सुहागकी निशानी जो बची है उसे भी लेना चाहता है। मजबूरन मुझे बोलना पडा। अगर अपनी जानकी खैर चाहता है तो नथ उतारना तो दरकिनार मेरा सब ज़ेवर रखकर चुपचाप चला जा।"

कलाई उसने छोड दी और उसी तरह इत्मीनानसे लेटी रही। मेरी ज़िन्दगीमें यह पहला वाकया था। लमहे-भरको उस औरतकी इस दिलेरी-पर मैं सकते-सेमें आ गया। फिर मेरी गैरतने मुझे चुटकी ली, "इसी बिर्तेपर मर्द बना फिरता है ? औरतने हाथ पकड लिया तो ज़ेवर देकर क्या पुश्तैनी जवाँमर्दीको आज अलविदा कहेगा ?"

पुश्तैनी जवाँमर्दीको दाग लगाना मुझे मजूर न था ! दोबारा नथपर हाथ रख दिया ! इस बार वह उठ बैठी और लपककर मेरे दोनो कान पकड लिये और झुँझलाकर बोली, "क्यों रे जानवर ! तू अपनी हरकतसे बाज़ न आया, मैं चुपचाप रही तो तैंने निरा मोमका ही हमे समझा। खबरदार जो जरा भी हिलनेकी कोशिश की, वर्ना कान उखेड लूँगी।"

यह सब उसने इस शानसे कहा जैसे माँ बच्चेको धमकाती है, या शैतान बालक कुत्तेके पिल्लेको।

मेरी जवानी यह कब बर्दाश्त करती कि मैं कान पकडवाये बैठा रहूँ

और वह भी एक औरतसे। चाहा कि कान छुडा लूँ और मियाँ-बीबी दोनो-को घसीटकर डाल दूँ किसी कुएँ-तालाबमे ताकि इन्हे मालूम हो, शेरके कान पकडनेकी क्या सजा होती है ?

मगर मेरी उस चाहकी कै कौडी उठती ? कान तो उस औरतके हाथमें थे। औरतके हाथमे क्या यूँ कहिए कि शिकजेमे कसे हुए थे। कान छुडानेकी काफी कोशिश की, मगर सब बेकार। आखिर जिस्मकी सारी ताकत लगाकर कान छुडानेको जोर लगाया तो कान तो छूट गये, मगर उसके हाथसे नही, मेरी कनपटीसे। मै बूचा हो गया।

इस छीना-झपटीमें उसके शौहरकी भी नीद उचाट हो गयी। उसने मेरा यह बेहाल देखा तो खिल-खिल हँसने लगा। सबब मालूम होनेपर बोला, "पागल ? तुझे किस शामतने इधर भेज दिया, तू यह नही जानता कि जो इस सुनसान जगलमें इस तरह सोये हुए है, वे क्या निरे दूध-बताशे होगे ? मर्द होकर एक औरतसे कान उखडवा लिये, यह तूने अच्छा नही किया। मर्द होनेके नाते मुझे खुद शर्म आ रही है, यह अब चाहे जब ताना दे लिया करेगी, कि मैं मर्दोके कान उखाड लेती हूँ। तेरी यह बुज़दिली मुझे हमेशा खटक देगी।"

उस वक़्तकी मै अपनी कैफियत क्या बयान करूँ ? मेरा गरूर पानी-पानी होकर आँखोंसे टपक रहा था। दिल चाहता था कि जमीन फट जाये तो उसमें समा जाऊँ। मेरी जवाँमर्दी भीगी बिल्ली बनी हुई थी। उस रोज पुश्तैनी पेशेको हमेशाके लिए खैरबाद कहा और मजदूरी करके पेट भरनेका फैसला किया। खुदाका शुक्र है कि उस बातको तीस वर्ष होनेको आये और मै अपने फैसलेपर कायम हूँ।

वीर, दिल्ली, १३ अप्रैल १९४० ई०

■

हियेकी आँख कब खुलती है ?

जून १९५० के 'निगार' मे "जहाँगीर एक शिकारीकी हैमियतसे" एक लेख प्रकाशित हुआ है, जिसमें जहाँगीर बादशाहकी डायरीसे शिकार सम्बन्धी विवरण उद्धृत किये गये हैं। उस डायरीके दो अश यहाँ दिये जा रहे हैं। बादशाह जहाँगीर लिखता है

"एक बार मेरे जहनमें यह बात आयी कि शुरूसे इस वक्त तक जितने जानवर मैंने शिकार किये है, उनकी फेहरिस्त बनायी जाये। चुनाचे मैंने अखबारनवीसोको हुक्म दिया और उन्होंने जो फेहरिस्त बनायी, उससे मालूम हुआ कि बारह सालकी उम्रसे आज तक अट्ठाईस हजार पाँच सौ बत्तीस सिर शिकार किये हुए जानवरोके मेरे सामने पेश किये गये।"

आगे इन मारे हुए जानवरोके नामोकी तालिका दी हुई है, जिसके उद्धरणकी हम आवश्यकता नही समझते। अन्तिम आयुमे जहाँगीरने शिकार न खेलनेकी प्रतिज्ञा कर ली थी। वह प्रतिज्ञा क्यो की गयी, इस वाकयेका बयान वह इस प्रकार करता है

"मेरे बेटे शाहजहाँका महबूब (अत्यन्त चहेता, प्यारा) बेटा 'शुजा' जिसने नूरजहाँ बेगमकी आगोशमें परवरिश पायी थी, और जो मुझे जानमे ज़्यादा अज़ीज (प्रिय) था, बीमार हुआ। बहुत इलाज हुआ, लेकिन कोई फायदा नही हुआ तो मैंने बारगाहे-रब्बुल आलमीन (दयालु ईश्वरके दरबार) मे दुआ (प्रार्थना) की। उस वक्त मुझे खयाल आया कि सत्रह साल कब्ल मैंने खुदासे अहद (वायदा) किया था कि जब मेरी उम्र पचाससे मुमतादज हो जायेगी तो मै शिकार छोड दूँगा और मै किसीकी जान न लूँगा। और सोचा कि मुमकिन है इस अहदके पूरा करनेसे शुजा

अच्छा हो जाये। चुनाचे मैंने इसपर अमल किया और गुजा अच्छा हो गया।"

जहाँगीरकी उक्त डायरी पढते हुए मुझे अपने जीवनकी कई घटनाएँ स्मरण हो आयी। ऊँट जब पहाडके पाससे गुजरता है तभी उसे अपनी तुच्छताका आभास होता है। हजरते-इनमान धन-यौवन, बल-पराक्रम, बुद्धि और सत्ताके अभिमानमें इतना अन्धा हो जाता है कि उचित-अनुचित उसे कतई नही सूझता। जब उसे कुदरतकी ओरसे ठोकर लगती है, तभी उसके हियेकी आँखें खुलती है।

१

सन् १९३१ के जाडोके दिन थे। मोण्टगुमरी जेलमे मैं भी अन्य सत्याग्रहियोंके साथ बन्दी था। वहाँका जेलर रायसाहब घनश्यामदास अपने अत्याचारो और क्रूर स्वभावके कारण पजाब-भरमें प्रसिद्ध था। कैदियोपर कम्बल डलवाकर उनकी हड्डी-हड्डी तुडवा देना, गुदामें मिर्चे भरवा देना, गन्दे हौजमें डुबकियाँ लगवा देना, उसका अदना करिश्मा था। उसका आतक ऐसा था कि बडे-बडे जवाँमर्द कैदी उसके नामसे काँपते थे। वे दो भाई थे। बडा जमनादास मुलतान जेलका और छोटा मोण्टगुमरी जेलका दारोगा था। सिक्ख सत्याग्रहियोपर बडे भाईने मुलतानमें वह ज़ुल्म किये कि चारो ओर त्राहि-त्राहि मच गयी। शास्त्रोमें वर्णित नरकका दारोगा उसके समक्ष हेच मालूम होने लगा। आखिर एक घटनासे उसकी आँखें खुली।

उसकी माँ अकसर अपने गाँव रहती थी। ग्रामीण रिवाजके अनुसार वह भी शौचादिके लिए खेतोमें जाया करती थी। बेटेकी करतूतोसे गाँवमे भी क्षोभ फैलता जा रहा था। देशद्रोहीकी माँसे भी लोग मन-ही-मनमें घृणा करने लगे थे। तभी एक रोज़ किसीने हिकारत-भरे स्वरमे कड-कती हुई आवाज़मे कहा, "बुड्ढी! इस टट्टीको उठा ले वर्ना ठीक नही होगा।"

इस आवाज़को सुनकर वुढियाकी हालत वैसी ही हुई, जैसी कि जय-जयकारके नारे सुननेके अभ्यस्त नेताओकी स्थिति काले झण्डे दिखानेपर होती है। वुढिया रोवीले स्वरमें वोली, "ओरे छोकरे, तू क्या वकता है?"

"मै वकता नही, हुक्म देता हूँ, अन्यथा यह तेरे मुँहमें भर दी जायेगी। औरत समझकर तुझसे कुछ नही कहा जा रहा है। वर्ना जैसे तैने सांप जने है, जी चाहता है तेरा मुँह कुचलकर रख दूँ।"

वुढिया मौकेकी नज़ाकतको समझ गयी। चुपचाप टट्टी अपने आँचलमें वाँधकर वह सीधी मुलतान अपने वेटेके पास पहुँची। ज़ालिम वेटा माँकी इस हालतको देखकर सिहर उठा, और आइन्दा इस तरहके जुल्म न करनेकी प्रतिज्ञा की।

२

छोटे भाईकी हियेकी आँखें खुलनेका माजरा इस प्रकार है सन् १९३१ के जाडोका सोमवार था। परेडका दिन था। हम सब खडे हुए थे और जेल सुपरिण्टेण्डेण्ट मुआयना कर रह था। मेरी सीटके ठीक सामने सरदार शेरसिंहकी सीट थी। उसके सामनेसे सुपरिण्टेण्डेण्ट और उसका काफिला गुज़रा तो वह खडे होनेके वजाय लेट गया। उसका लेटना था कि हम सबमे वेचैनी फैल गयी, कि लो भई, वैठे-विठाये नागहानी मुसीवत नाज़िल हुई। हमारे मस्तिष्कमे अभी यह विचार आया ही था कि जेलर फौरन मुडा और घवराकर वोला, "देखो-देखो इसको कोई तकलीफ मालूम होती है।" देखा तो वह वेहोश था। उसे जल्दीसे हॉस्पिटल भिजवाया गया। हम लोग जेलरके इस अभूतपूर्व सद्व्यवहारसे चकित थे। मगर-मच्छके आँसू सुने थे, देखे नही थे कि वह स्वय ही वोला, "मेरी ज़िन्दगी-में आज यह पहला वाकया है कि मुझे गुस्सेके वजाय रहम आया। अच्छा हुआ यह कुछ रोज़ पेश्तर वेहोश न हुआ, वर्ना इसकी हड्डियाँ तुडवा दी गयी होती।"

मैं पूछना ही चाहता था कि, "किब्ला ! आपकी जिन्दगीमें यह यकायक इन्किलाव कैसे हुआ !" कि वह खुद ही एक ठण्डी साँस भरकर बोला, "हम दोनो भाइयोके एक भी बच्चा नही है। एक भानजा है उसीको औलादकी तरह पाला-पोसा है। पन्द्रह-बीस रोज़से मियादी बुखारमें मुब्तिला है। हजार इलाज कर लिये, लेकिन दिनपर दिन हालत खराब होती जा रही है। अब मैं समझ पाया हूँ कि और भी मेरे बच्चेकी तरह बीमार होते होगे। मेरी तरह और लोगोको भी सदमा पहुँचता होगा। आप दुआ कीजिए कि मेरा बच्चा अच्छा हो जाये। मैं कसम खाता हूँ कि अब ता-हयात किसीपर ज़ुल्म न तोडूँगा।"

३

इसी जेलमे मेरे सामने इसके डिप्टी जेलरने एक कैदीकी गुदामें खूँटा ठोक दिया था, जिससे उसकी तत्काल मृत्यु हो गयी। राजनैतिक बन्दियोकी गवाहियाँ देनेपर जब वह बन्दी होकर जेलमें आया तो पाँवोमे पडता था, काली गऊ बनकर क्षमा कर देनेको गिडगिडाता था, परन्तु बन्दी होनेसे पूर्व कैदियोकी खाल उधडवा देना मामूली बात समझता था।

४

अप्रैल १९४१ की बात है मुझे दिल्लीसे डालमियानगर आये पाँच-सात रोज़ हुए थे। न नौकरीका कोई निश्चय हुआ था न रहनेको क्वार्टर ही मिला था। गेस्टहाउसमे ठहरा हुआ मुफ्ती रोटियाँ तोड रहा था। इन दिनो चीनी मिलका सीजन था। अत मनबहलावके लिए केन आॅफिस जाना शुरू कर दिया था। न मुझे अपने कार्यका पता था न बैठनेके लिए कोई स्थान नियत था। फिर भी सौ-पचास आदमी सलाम करने लगे थे। कुछ बेकार, नौकरी लगवा देनेकी प्रार्थना करते थे। कुछ अस्थायी नौकरीवाले स्थायी नौकरी दिला देनेकी मिन्नतें करते थे। कुछ खासे

पढे-लिखे बाबू मुझे 'सर' और 'हुजूर' कहकर बोलने लगे थे। इन सब बातोंका परिणाम यह हुआ कि मैं अपनेको 'सर' और 'हुजूर' तो नही, पर कुछ-न-कुछ समझने जरूर लगा। किसीको नमस्तेका जवाब ज़रा-सा सिर हिलाकर, किसीको मुसकराकर, किसीको एक हाथ उठाकर देता और किन्हीको जवाब ही न देता। स्वरमें अधिकारकी-सी बू आने लगी, चाल-में गम्भीरता आ गयी। तभी एक करारी चपत मुँहपर लगी।

जहाँ ईख मिलको जाती है, मैं वहाँसे गुजर रहा था कि एक आदमी-ने दो गन्ने चूसनेके लिए उठा लिये। मैंने देखते ही कहा, "क्यो बे! तूने यह गन्ने क्यो उठाये?" उसने वे गन्ने गिरा दिये और चलता बना। मैं आठ-दस कदम आगे बढा हूँगा कि मनने, धिक्कारा, "गोयलीय! पाँच-सात रोजमे ही इतना परिवर्तन? क्या हो गया है तुझे?" तत्काल उस आदमीको पुकारकर कहा, "अच्छा अब तो ले जा, आइन्दा ऐसी हरकत न करना।" इस आवाजमें सहृदयताकी नही, एक महरबानीकी-सी पुट मिली हुई थी और वह भी अधिकारके मिश्रणके साथ।

उसने फिर वे गन्ने नहीं उठाये और बगैर पीछे मुडे ही वह सीधा चला गया। मैं कुछ झेंपा-सा, कुछ क्लान्त-सा गेस्टहाउस पहुँचा तो वहाँ चप-रासीने तार दिया जिसमें लिखा था .

"चिल्डरन इल, कम इमीजेटली"

दिल्ली पहुँचा तो दोनो लडके सख्त बीमार मिले। महीने-भरकी दौड-धूपमें एक बचा, दूसरा चलता हुआ। यह मैं जानता हूँ गन्नेसे इस घटनाका कोई सम्बन्ध नही है। तार तो इस घटनासे दो रोज पहले चल दिया था और बच्चे एक सप्ताह पूर्व बीमार पड चुके थे। पर, न जाने मेरा दिल क्यो यह कहता है कि तेरे वाक्यमे अभिमान न होता और केवल कर्त्तव्यवश तूने ईख लेनेमे मना किया होता, तो वह भी, बच जाता।

१९५० ई०

■

काजरकी कोठरीमें भी बेदाग

मियाँ उधमसिंह[1] कचहरीमें मुन्शी है, और मेरे परम मित्र श्री० सुमत-प्रसाद जैन प्रथम श्रेणीके मजिस्ट्रेटके मातहत होश्यारपुरमे काम करते है। एक-सौ बीस रुपये मासिक वेतन पाते है। ऐसे पेशेमें होते हुए भी, जो रिश्वत-खोरीके लिए बदनाम है, बल्कि जिसमे रिश्वत लेना और देना नियम-सा बन गया है मियाँ उधमसिंहकी ईमानदारी ज़िले-भरमे प्रसिद्ध है। किसीने आज तक उनको एक पैसा रिश्वत लेते नही सुना। इसपर तारीफ यह कि काममें भी ज़िलेका कोई अहलकार उनका मुकाबला नही कर सकता। एक दिन शामको अदालत समाप्त होनेपर गवाहोको सफर-खर्च देते समय किसी गवाहने उनका बटुआ उचका लिया। बटुवेमें दो-सौके लगभग रुपये थे। यह रकम सरकारी जुर्मानेकी वसूली की थी और अगले दिन सरकारी खज़ाने-में जमा करानी थी। बटुवेको हरचन्द तलाश किया गया, परन्तु वह न मिलना था, और न मिला। जो आठ-दस गवाह खर्चा ले गये थे, बटुआ नि सन्देह उन्हीमें-से एकने चुराया था। मेरे मजिस्ट्रेट मित्रको जब इस घटनाका पता लगा तो उन्हें यह चिन्ता हुई कि उधमसिंह-जैसा गरीब आदमी इस सरकारी रकमको जमा कैसे कर सकेगा! वह बेचारा नागहानी मुसीबत-परेशानीमें फँस जायेगा। मुशीजीके स्वाभिमानको चोट न पहुँच जाये, इस भयसे उनकी सहायता भी नही की जा सकती थी। आखिर एक हल सूझ ही गया। वही कचहरीमें चार-पाँच ऑफिसर्सने आपसमे अपनी जेबोसे दो-सौ रुपये एकत्र किये और मुशीजीको इस सहायताका आभास न

---

१ ऊधमसिंहका 'मियाँ' खानदानी लक़ब है।

मिल जाये, इस खयालसे जाहिरामे थानेदारको बुलाकर आदेश दिया कि अपराधीकी तुरन्त खोज की जाये। मियाँ ऊधमसिंहको इस आदेशका पता लगा तो हाथ बाँधकर बोले, "हजूर, अपना आदेश वापस ले लें। अपराधी-की खोज कैसे होगी? दोष तो उन आठ-दस गवाहोंमें-से शायद एकका होगा, परन्तु पुलिस उन सबको व्यर्थमें तंग करेगी। मैं नहीं चाहता कि मेरे कारण किसीको कष्ट पहुँचे। यह रकम मैं अपने पाससे सरकारी खजानेमें भर दूँगा। यह रुपये मेरे भाग्यके होते तो जाते ही क्यों?" बहुत ज़ोर देनेपर भी मियाँ ऊधमसिंह पुलिसकी मार्फत अपराधीकी खोज करानेके लिए सहमत न हुए। केवल इसलिए दो-सौ रुपयेकी चुपचाप चपत खा ली कि किसी निरपराध मनुष्यपर उनके कारण कहीं कुछ अत्याचार न हो जाये। एकत्र किये गये दो-सौ रुपये लेनेमे भी मुंशीजी सहमत न हुए, मुसकराकर टाल गये।

मार्च १९५१ ई०

■

आत्म-विश्वास

जेलमे मलेरिया वुखार किसीको न आ जाये, इस खयालसे प्रत्येक कैदीको जवरन कुनैन-मिक्सचर पिलाया जाता था। उन दिनो विलायती दवासे मुझे परहेज था। अत जब वे मेरी ओर आये, तव मैने दवा पीनेसे क़तई इनकार कर दिया। कुछ लिहाज समझिए या आत्म-विश्वास समझिए, सिपाहियोने मुझे जवरन दवा नही पिलायी, किन्तु यह अवश्य कहा कि दवा न पीनेकी सूचना हमे साहव (सुपरिण्टेण्डेण्ट जेल) को अवश्य देनी होगी और फिर आपपर काफी सख्ती होगी और दवा भी पीनी होगी। सिपाहियोकी सूचनापर साहव मेरे पास आया और दवा न पीनेका कारण पूछा। मैने दवा पीनेमें अपनी असमर्थता प्रकट की तो वोला, "यदि वीमार पड गये तव ?" मेरे मुँहसे अनायास निकल पडा, "यदि वीमार हो जाऊँ तो आप कडीसे कडी सज़ा दे सकेंगे।" साहव ऑलराइट कहकर चला गया ? किन्तु सज़ाकी पूरी अवधि तक मुझे दवाकी तनिक भी आवश्यकता न पडी। वुखार, खाँसी, जुकाम, कब्ज़ वगैरह मुझे कुछ भी नहीं हुआ। इतने अर्सेमें एक भी तो शिकायत नही हुई। जब कि अन्य साथी दो-तीन माहमें ही जेलसे वीमारियोका पुज वनकर निकलते थे।

अनेकान्त, दिल्ली, जून १९३९ ई०

■

घाटेका सौदा

हमारे एक सुपरिचित मिस्टर ज···· 'एक बडी कम्पनीमें प्रधान व्यवस्थापकके प्रतिष्ठित पदपर आसीन है। अत्यन्त कर्त्तव्यशील, कार्यदक्ष और सज्जन पुरुष है। बडे ठाटसे रहते हैं। पिछले दिनो उनके घरमे चोरी हो गयी। ज़ेवर, नकद, सब कुछ जाता रहा। अनुमानत तीस हज़ारका धक्का लगा। उनकी कम्पनीके मालिकको जब इस चोरीका पता लगा तो उसने उन्हें बुलाकर सब वृत्तान्त पूछा। मालिक इनके कामसे हर प्रकारसे प्रसन्न और सन्तुष्ट था। इस भारी नुकसानको सहन करना इनके लिए अत्यन्त कठिन होगा यह सोचकर मालिकने तीस-हजार रुपयेका चेक काट-कर इनके हाथमे थमा दिया और कहा, "मिस्टर ज' तुम्हारा नुकसान मैं अपना नुकसान समझता हूँ। हानिकी पूर्त्ति-स्वरूप यह भेंट तुम मेरी ओरसे स्वीकार करो।" मिस्टर ज ने चेक लौटाते हुए अतीव विनम्रतासे कहा, "श्रीमान्! मैं आपका बहुत आभारी हूँ। चेक जो लौटा रहा हूँ इसे आप मेरी धृष्टता न समझें। मैं जानता हूँ कि इस भारी नुकसानको आसानीसे बरदाश्त करनेकी क्षमता मुझमे नही है, परन्तु मैं घाटेका सौदा करना नही चाहता। चेक देनेमे जो अनुग्रह और सहानुभूति आपने मेरे प्रति दरशायी है, उसका मूल्य तीस-हज़ार रुपयेसे कही अधिक है। इस चेकको लेकर मैं उस पूँजीको परिमित करना नही चाहता।"

मालिक यह जवाब सुनकर दग रह गया। इसे सयोग समझो या पुरस्कार, कुछ ही महीनोमें मिस्टर ज' के वेतन और पदमे आशातीत तरक्की हुई। और अब तो वे स्वय भी इतने मूल्यके चेक किसीको भेंट करनेकी क्षमता रखते है।

मार्च १९५१ ई०

■

पंचायती सत्कार

दिल्लीके पहाडी-धीरज बाजारमे एक कहार चाट वेचा करता था। एक रोज चार-पांच वर्षकी आयुका एक लडका अपने घरसे दो गिन्नियाँ धेले समझकर उठा लाया। एक गिन्नी किसी फेरीवालेको देकर उससे चने लिये और दूसरी गिन्नीकी इस कहारके यहांसे चाट ली। चाटवाला उस वक्त घर गया हुआ था। उसके सात-आठ वर्षके लडकेने भी उसे धेला ही समझा। जब चाटवाला आया तो लडका बोला, "चाचा, यह नया धेला तो हम लेंगे।"

चाटवाला गिन्नी देखकर घबराया, उसने पासके दुकानदारको बुलाकर लडकेसे सब माजरा सुना और गिन्नी उस दुकानदारके पास अमानत रख दी, ताकि वास्तविक मालिकके पास वह पहुँचा दी जाये, और गिन्नी यथास्थान भेज भी दी गयी। मुझे जब इस घटनाका पता चला तो मैं उस ग़रीब चाटवालेकी इस ईमानदारीसे बहुत प्रभावित हुआ और मैंने यह विवरण पत्रोंमें प्रकाशित करा दिया।

पत्रोंमें छपनेके दो-तीन रोज़ बाद वह चाटवाला मेरे पास आया और कृतज्ञता-भरे स्वरमें बोला, "एक गिन्नीसे हुज़ूर क्या पूरा पडता। आपने जो मुझे इज़्ज़त दिलायी है, उसके आगे करोडोंकी दौलत हेच है। अख-बारोंमें यह खबर छपनेपर हमारी बिरादरीकी पचायत हुई, जिसमें मुझे बुलाकर शाबाशी दी गयी और कहा गया कि तैंने अपनी जातकी इज़्ज़त बढायी है। हुज़ूर, आपकी बदौलत मेरी इतनी इज़्ज़त हुई, आपका किस मुँहसे उपकार मानूँ।"

मैंने कहा, "इतने ग़रीब होते हुए भी जो तुमने आदर्श उपस्थित किया है, उसे जनताके सामने रखना एक लेखकके नाते मेरा फर्ज़ था। तुम्हारी ईमानदारी इससे भी ज़्यादा इज़्ज़त पानेकी अधिकारी है।"

फरवरी १९५१ ई०

■

विमल भाई

मेरे एक अत्यन्त स्नेही साथी है, जिन्हें कुछ लोग 'खब्ती भाई' कहते है, कुछ लोग उन्हें सनकी समझते है और कुछ समझदार दोस्तोका फतवा है कि इनके मस्तिष्कका एक पेंच ढीला है।

मेरा इनसे सन् १९२५ से परिचय है। इन पचीस वर्षोंमे समीपसे समीप रहनेपर भी मुझे इनमें खब्त और सनकका आभास तक नही मिला, फिर भी मैं हैरान हूँ कि क्या बालक, क्या युवा, क्या वृद्ध सभी उन्हें खब्ती भाई कहते हैं।

गोरा शरीर, किताबी चेहरा, आँखें बडी और रसीली, चौडी पेशानी, मझोला कद, सुडौल कसरती जिस्म, शरीरपर स्वच्छ और धवल खादीकी मोहक पोशाक, चाल-ढालमें मस्ती और स्फूर्ति। एफ० ए० तक शिक्षा, भले और प्रतिष्ठित घरमे जन्म, बातचीतमें आकर्षण, राष्ट्रीय विचारो और लोकसेवी भावनाओसे ओतप्रोत। महात्मा गान्धीसे किसीका दिल दुखा हो, परन्तु इनसे असम्भव। फिर भी दोस्तोके दायरेमें मजहक़ाखेज बने हुए हैं और उसपर तुर्रा यह कि बुरा माननेके बजाय फूलकी तरह खिलते रहते हैं।

एक रोज़ मैं और एक मेरे साहित्यिक मित्र विमल भाईकी चर्चा कर रहे थे और उनपर फब्तियाँ कसनेवालोपर छींटे उडा रहे थे कि समीप ही बैठा हुआ उनका ग्यारह बारह वर्षका छोटा भाई पढते-पढते बेसाख्ता बोला, "हाँ-हाँ वह खब्ती है, सनकी है, मैं शर्त बदकर कहता हूँ।"

अब हमारी क्या सामर्थ्य थी जो बात काटते। एक तो छोटा, दूसरे शर्त बदनेको तैयार। फिर भी हिम्मत बाँधकर पूछ ही बैठे, "हुजूरको

उसमें क्या खब्त दिखाई देता है ?

वह एक अजीव-सा मुँह वनाकर बोला, "एक खब्त। अजी भाई साहब! वह सिरसे पैर तक खब्त-ही-खब्तसे ढका हुआ है। जिस मुर्दनी-में कुत्ते न झाँके, वहाँ इन्हें देख लीजिए। सुबह-शाम हजरतके हाथमें ऐरे-गैरे नत्थूखैरोके लिए दवाओकी शीशियाँ रहती है, खुदके पांवमें साबुत जूतियाँ नही और उस रोज़ दुकान बेचकर उस ' नादिहन्दको, जिससे पठान भी तोवा माँग चुके हैं, दो-हज़ार रुपये दे दिये। उस रोज़ स्कूलसे आते हुए यारोने उन्हें वनानेके खयालसे कहा—

"वडे भाई, आज तो ईखका रस पिलवाओ।" थोडी देरमे क्या देखते हैं कि हम आठ-दस साथियोके लिए ईखके रसके वजाय सन्तरेके रस-के गिलास आ रहे हैं। हमने खिलाफ तवक्कह देखकर पूछा, "बडे भाई, यह क्या तकल्लुफ?" फरमाया, "आप लोग कब-कब पिलानेको कहते है।"

"रस पी चुकनेपर हम सवकी मुश्तर्का राय थी कि विमल भाई खब्ती होनेके साथ-साथ बुद्धू भी हैं।"

लडकेने अपनी बात कुछ इस ढगमे कही कि मेरे वे साहित्यिक मित्र तपाकसे वोले, "हाँ यार, इनके खब्तका एक ताज़ा लतीफा तो सुनो,

"पुकार फिल्ममें किस कदर रश है, यह तो तुम्हें मालूम ही है। विमल भाईने भी भीडमें घुसकर चार-पाँच फर्स्ट क्लास टिकिट खरीद लिये। एक तो अपने लिए वाकीके परिचित या मुहल्लेके लोगोके लिए, इस खयालसे कि कोई आये तो परेशान न हो। दर्शकोकी भीड हालमे घुसी जा रही है और विमल हैं कि आनेवाले परिचितोकी प्रतीक्षामे वाहर सूख रहे हैं, और जव राम-राम करके टिकिटोसे मुक्ति पायी तो हालमें तिल रखनेको जगह न थी। टिकिट जिन साहवने लिये, उनमें-से किसीने फ्री पास समझ-कर और किसीने वुरा न मान जायें, इस भयसे टिकिटके दाम नही दिये। एक साहवने दाम देनेकी जहमत फरमाते हुए अठन्नी उनके हाथपर रखी और वोले, "जव हाउस फुल हो गया तो टिकिटके पूरे दाम कैसे ?"

यह लतीफा उन्होने इस अन्दाज़मे बयान किया कि हम लोट-पोट हो गये। रातको सोने लगा तो मुझे विमल भाईकी ऐसी कई बातें स्मरण हो आयी, जिन्हें मैं अबतक उनको ख़ूबियाँ तसव्वुर किया करता था। अब जो दुनियाकी ऐनक लगाकर देखता हूँ तो रग ही दूसरा नज़र आने लगा।

सन् १९३३ की बात है। मुझे ऐतिहासिक अनुसन्धानके लिए अकस्मात् उदयपुर जाना उसी रोज़ आवश्यक हो गया। मार्ग-व्ययके लिए तो रुपये उधार मिल गये, और ठहरने आदिकी सुविधा इतिहास-प्रेमी बलवन्तसिहजी मेहताके यहाँ हो गयी, परन्तु पहननेके कपडे मेरे पास कतई नही थे। जेलसे आकर बैठा था। जो कपडे थे, उनमें-से कुछ धोबीके यहाँ थे, कुछ मैले पडे थे। स्वच्छ एक भी न था, और उदयपुर जाना उसी रोज़ अत्यन्त आवश्यक था। बडी असमजस और चिन्तामे था कि यकायक विमल भाई आये और बोले, "सुना है आप उदयपुर जा रहे हैं, वहाँ आपको कई रोज़ लगेंगे। मेरे पास फालतू कपडे तो नही हैं, परन्तु आप घरपर दिन-भर रहें तो आपके सब कपडे धो दूँ।" मजबूरन विमल भाईको कपडे देने पडे। शामको धोकर दिये तो इतने स्वच्छ कि धोबी भी देखकर शरमाये।

गत वर्ष गरमीके दिनोमे आपके यहाँ चोरी हो गयी। जिन बिस्तरोपर आप आराम फरमा रहे थे, उनको छोडकर नकद, जेवर, कपडे, बरतन सब ले गये। लगे हाथ झाडू भी दे गये, ताकि सुबह उठकर सिर पीटकर रोनेके अतिरिक्त आपको झाडू देनेकी ज़हमत न उठानी पडे। समाचार सुना तो घबराया हुआ विमल भाईके यहाँ पहुँचा। समझमें नहीं आता था कि इस महँगी और कण्ट्रोलके ज़मानेमें अब कैसे पौन दर्जन फ़ौजका तन ढकेंगे। और हवा-पानीके अलावा क्या खाने-पीनेको देंगे। सान्त्वना देनेके लिए न कोई शब्द सूझते थे, न कोई कमबख्त शेर ही याद आता था। इसी उधेडबुनमें मुँह लटकाये पहुँचा तो विमल भाई देखते ही खिल उठे, और मैं

कुछ कहूँ, इससे पहले स्वयं ही बोले,

"भाई, हमारा तो सदैवके सकटसे पीछा छूट गया। यक़ीनन आजसे हमारे बुरे दिन गये और अच्छे दिन आये।"

मैंने समझा कि विपदाका पहाड टूट पडनेसे विक्षिप्त हो गया है। परन्तु वह विक्षिप्त नही था, फिर बोला, "भाई, यह परिग्रह ही सब झगडोकी जड है, इसीके कारण अनेक क्लेश और बाधाएँ आती हैं। अब सुख-चैन-ही-सुख-चैन है। रोटियाँ तो खानेको मिलेंगी ही। आधे दर्जन बच्चे हो गये, अब पत्नी ज़ेवर पहनते क्या अच्छी लगती थी? विलायती कपडा सब जाता रहा, अब झक मारकर स्वदेशी पहनेगी!" और फिर वही चेहरेपर फूल-सी मुसकराहट।

उठकर चला तो वहाँसे एक साहब साथ और हो लिये। फरमाया, "देखा आपने इनका खब्त। लोगोके घर चोरी होती है तो दहाड मारकर रोते हैं और एक आप हैं कि खिल-खिल हँस रहे है। गोया चोरी नही हुई, लाटरीमें हरामका रुपया हाथ लग गया है। अगर इनका बस चले तो चोरी होनेकी खुशीमें दावत दे दें।"

सान्त्वना प्रकट करनेके लिए तो मुझे कोई शेर याद नहीं आया, उसकी आवश्यकता भी नहीं पडी, परन्तु इन साथीकी बकवासपर गालिब-का शेर मनमें झूमने लगा,

न लुटता दिन को तो यूँ रात को कब बेख़बर सोता।
रहा खटका न चोरी का दुआ देता हूँ रहजन को॥

सन् १९३०के असहयोग आन्दोलनमे आपने खद्दरकी दुकान खोली। विमल भाईकी दुकानपर बाहरके व्यापारी तो तब आते, जब परिचित यारोकी कुछ कमी होती। भीड लग गयी, लोग हैरान कि जिसने कभी दुकान नहीं की, वह इस फर्राटेसे क्योकर बिक्री कर रहा है? घरवाले भी खुश कि चवन्नी न सही, दुअन्नी रुपया भी मुनाफा लिया तो दो-सौ-तीन-सौ रुपयेकी बिक्रीपर पचीस-तीस तो कही भी नहीं गये। हमने

स्वय अपनी आँखोसे आपकी दुकानदारीके जौहर देखे। दुकान ऐसी चली कि दो-तीन माहमें ही पंख निकल आये। माँने अपने तीन-हज़ार रुपये माँगें तो आपने एक हज़ार रुपयेकी उधारकी लिस्ट दे दी और दो हज़ार रुपये एकके नाम ऋण लिखे दिखला दिये।

माँने सिर पीटकर कहा, "तैने उस ना-दिहन्दको दो-हज़ार क्यो पकडा दिये?"

फरमाया, "माँ, तू तो वेकारमे घवराती है, उसने मुझे क़सम खाकर दो-हजार रुपये जल्दी लौटानेको कहा है। उसे पठान तग कर रहे थे, इसीसे उसे रुपयेकी ज़रूरत आ पडी थी।"

इन अठारह वर्षोमे जव-जव विमल भाईसे पूछा कि वे रुपये पटे या नही। तव-तव आपने वडे विश्वासके साथ कहा, "भई, रुपये भारमे थोडे ही है! वेचारा खुद मुसीवतमे है, उससे रुपयेका तकाजा करना भलमन-साहतमें दाख़िल नही।"

मैं इन तेईस वर्षोमे स्वय निर्णय नही कर पाया कि विमल भाई खव्ती हैं या जीवन्मुक्त? क्या पाठक अपनी उपयुक्त सम्मति देंगे।

अनेकान्त, दिल्ली, फरवरी १९४८ ई०

■

भिक्षुक मनोवृत्ति

वहुधा लोगोके जीवनमे ऐसे अवसर आते हैं कि दिन-भर भूखे-प्यासे रहनेसे पेट अँतडियोसे लग गया है, जीभ तालूसे जा लगी है, ओठोपर पपडियाँ जम गयी हैं, और चकते-चलते पाँव मूसल हो गये हैं। न पासमे एक धेला है, जो चने चवाकर ही ठण्डा पानी पिया जाये, न मज़िले-मकसूद ही नज़र आती है। पासमें पैसे न होनेकी वजह मुफलिसी ही नही होती, आकस्मिक घटनाएँ भी होती है। कभी जेब कट जाती है, कभी घरसे लेकर न चले और साथियोने रास्तेसे ही पकड लिया और समझा कि अभी वापस आये जाते हैं, मगर रास्तेमें कार फेल हो गयी या ताँगा पलट गया, पैदल चलनेके सिवा कोई चारा नही। कभी रेलवे टिकिटके लिए एक-दो पैसेकी कमी रह गयी है, परदेशमे किससे माँगे, कोई जान-पहचानका भी तो दिखाई नही देता, कि इस मुसीबतसे निजात मिले। यदि दिखाई दिया भी तो माँगनेकी हिम्मत न हुई, ओठ काँपकर रह गये। घरमें बच्चा बीमार पडा है, उसी रोज़ वेतन मिलनेवाला है, मगर डॉक्टरको बुलानेके लिए रुपये फीसको तो कुजा, आफिस जानेके लिए इक्केके लिए दो पैसे भी नही है। और मनमें यह सोच ही रहे हैं कि चलो बच्चेको ही हस्पताल गोदमें ले चला जाये, ऐसे ही नाज़ुक मौकेपर कोई साहब आते हैं। शक्लो-शबाहतसे अच्छे-खासे जीवकार और भले मालूम देते है। हाथमें चार-पाँच रुपयेकी रेज़गारी भी लिये हुए हैं। कुम्भ-स्नानको जाना है, एक-दो रुपयेकी जो कमी रह गयी है, उसे पूरी करने चले आये हैं और इनकी धज देखिए,—अन्न मुद्दतसे छोड रखा है, सिर्फ फल-दूधपर गुज़र फ़रमाते हैं, ऐसे सयमीकी सहायता करना आवश्यक है। भान्जीके भातमें दो-हजार रुपयेकी कसर रह

गयी है, ऐसे कारे-सवाबमें मदद करना खलाकी फर्ज है। अफीम खानेको पैसे नही रहे हैं, अफीम न मिली तो वेचारा जम्हाइयाँ लेते-लेते मर जायेगा, इनसानी जान बचाना निहायत ज़रूरी है। ऐसे दु:खद प्रसगोपर बडी विचित्र परिस्थिति होती है। खासकर उस अवसरपर जब कि आप, .खुद सही मायनोंमें इम्दादके मुस्तहक हैं, मगर अपनी वजअदारीकी वजह-से आप किसीपर भी यह राज़ जाहिर नही करना चाहते और तभी कोई आपके जाने-पहचाने साहब—किसी जल्सेके लिए, चौवेको भरपेट लड्डू खिलानेके लिए, किसी साधुके मन्दिरका कुआँ बनवानेकी हठ पूरी करनेके लिए, चिडीमारके चगुलसे तोते छुडानेके लिए, मुहल्लेमें साँग करानेके लिए, कलकत्ते-बम्बईमें चलनेवाली मज़दूर-हडतालके लिए, देवीका परसाद वाँटनेके लिए, कसाईके हाथसे लँगडी गाय छुडानेके लिए—चन्दा माँगने आ जाते हैं। तब कैसी दयनीय परिस्थिति हो जाती है, ना करनेकी हिम्मत नही, देनेको कानी कौडी नही। कभी दिल चाहता है, दीवारसे टकराकर अपना सिर फोड लें, कभी जी चाहता है, इन माँगनेवालोपर टूट पडें और जो ये लाये हैं, उसे छीनकर अपना काम चलायें। मगर कुछ नहीं बन पडता और एक निरीह, खुदग़रज़, अहकारी, रूक्षस्वभावी न जानें क्या-क्या लोगोकी नजरोंमें बनकर रह जाते हैं। कुछ आप बीती अर्ज़ करता हूँ,

सन् ३२ की दीवाली आयी और चली गयी, न हमारे घरमें चिराग़ जले न मिठाई आयी। इस बातसे हमारे चेहरेपर न शिकन आयी, न दिल-में कोई मलाल, बल्कि हकीकी मायनोंमें हमें अपनी इस बेबसीपर नाज़ था। क्योंकि यह मुसीबत दैवकी तरफसे नही, हमने खुद ही बुलायी थी। दीवालीसे दो-तीन रोज बाद माँने कहा, "बेटा, मुझे तुझसे कहना याद नहीं रहा, एक आदमी दस-बारह चक्कर लगा चुका है, न नाम बताता है, न काम, न तेरे मिलनेके वक़्तपर आता है, यूँ कई चक्कर काट चुका है।" माँ अपनी बात पूरी भी न कर पायी थी कि बोली, 'देख, वही

शायद फिर आवाज़ दे रहा है।"

बाहर जाकर उनका परिचय पूछूँ कि वे स्वय ही बोले,

"आप ही गोयलीयजी है।"

"जी, मुझी खाकसारको गोयलीय कहते है।"

"वाह साहब ! आप भी खूब है, पचासो चक्कर लगा डाले, तब आप मिले हैं।"

मैं हैरान कि ख्वाम ख्वा झाड पिलानेवाले यह साहब आखिर है कौन ? पुलिसवाले यह हो नही सकते, उनकी इतनी हिम्मत भी नहीं कि इस तरह पेश आयें, कोई क़र्ज़ मांगनेवाला भी नही हो सकता क्योंकि यहाँ यह आलम रहा है कि

"घर में भूका पड़ रहे दस फाके हो जॉय
तुलसी भैया बन्धु के कभी न मॉगन जॉय ॥"

जब तुलसी बाबा भैया-बन्धुसे मांगना वर्जित कर गये है, तब गैरोसे उधार मांगनेकी तो मैं बेवकूफी करता ही क्यो ? फिर भी मैने बडी आजिज़ीसे न मिलनेका अफ़सोस ज़ाहिर करते हुए उनसे ग़रीबखानेपर तशरीफआवरीका सबब पूछा तो मालूम हुआ कि मेरे साथ जो जेलमें एक वालियण्टियर एक-दो माह रहा था, ये उनके भाई है। उनकी तन्दुरुस्ती ठीक न होनेकी वजहसे वे शिमले जाना चाहते है। लिहाज़ा मुझे उनके पहाडी अखराजातके माकूल इन्तज़ामात कर देने चाहिए।

मैं तो सुनकर सन्न रह गया। पहले तो यही बडी मुश्किलसे समझमे आया कि ये आखिर ज़िक्र किन साहबका कर रहे हैं। यह जान-पहचान ठीक इसी तरहकी थी, जैसे कहार दिल्लीसे डोली खरीदकर ले जायें और लोगोंसे कहें कि पं० नेहरू रिश्तेमें हमारे साढू होते है, और कुरेदकर पूछनेपर बतायें कि, "जिस शहरसे पण्डितजी कमला नेहरूका डोला लाये थे, वहीसे हम भी डोली लाये है।"

मुझे उसकी इस दीदादिलेरी, बेतकल्लुफी, भीखके टूक और बाजारमें डकारवाली शानपर ताव तो बहुत आया, मगर घरपर आया जानकर बल खाकर रह गया और निहायत आजिज़ीसे मजबूरी जाहिर की। न चाहते हुए भी मुफ़लिसीकी रेखा खींची। मगर उसका यक़ीन न आया। "लोग बडे खुदगरज है, खुद गुलछर्रे उडाते है, मगर दूसरोको छटपटाते देखकर भी नही सिहरते।" इसी तरहके भाव व्यक्त करते हुए वे चले गये और मै अपनी इस बेबसीपर नादिम-सा होकर गडा-सा रह गया कि एक वे है जो स्वास्थ्य-सुधारने पहाड जा रहे है और एक हम है कि दम उखाडनेवाली खाँसीके लिए मुलैठी-सत भी नही जुटा पा रहे हैं।

कुछ घटनाएँ सन्तोपवृत्तिकी भी अर्ज़ करता हूँ,

१९३३ या ३४ की बात है। यमुनामें बाढ आ जानेसे निकटवर्ती गाँव बडी विपदामें आ गये थे। उन्हें भोजन, वस्त्र, दवा आदिकी अविलम्ब आवश्यकता थी। दिल्लीवाले प्राणपणसे सहायता पहुँचा रहे थे। हमारे इलाकेसे भी हज़ारो रुपये एकत्र हुए। हम एक कारमें आवश्यक सामान रखकर नहरके रास्तेमें पडनेवाले गाँवोंमें गये। वहाँ दवाएँ, वस्त्र आदि बाँटते हुए एक ऐसे गाँवमें गये, जहाँ वर्षासे बहुत हानि नही हुई थी और बादमें मालूम हुआ कि यह ब्राह्मणोका गाँव था। वहाँ गाँववालोकी सलाहसे यह तय हुआ कि पूरे गाँवके लिए कमसे कम एक सप्ताहके भोजनका प्रबन्ध फौरन कर देना चाहिए और जबतक स्थिति पूर्व-जैसी न हो जाये, बराबर साप्ताहिक सहायता आती रहनी चाहिए। जन-लेखाका हिसाब लगाया तो अस्सी मन गेहूँ फी हफ्ते बैठता था। गाडी यहाँ आकर अटकी कि अस्सी मन गेहूँ दिल्लीसे क्योकर लाया जाये? कारके आनेजानेकी ही ब-मुश्किल नहर-विभागसे आज्ञा मिली है। इस खतरेमें ट्रक या लारी तो किसी हालतमें भी नही पहुँच सकती थी।

हम लोगोको चिन्तामें पडे देख, गाँववाले बोले, "दिल्लीसे गेहूँ लानेकी क्या ज़रूरत है। हमारे यहाँ सबके पास गेहूँ भरा पडा है, दाम देकर चाहे

जितना खरीद लो।"

हमारी हैरानीकी हद न रही, हमने कहा, "अरे भई, जब तुम्हारे पास गल्ला भरा पडा है, तब तुम नाहक क्यो लेना चाहते हो ?"

वे बोले, "वाह साहब, आप जब इतनी दूर चलकर देने आये है, तब हम क्यो न लें, आप भी अपने मनमे क्या कहेंगे कि ब्राह्मण होकर दान लेनेसे इनकार किया।" हमने हँसी और आवेशको रोककर कहा, "भई, हम इस वक्त ख़ैरात करने नही आये, अपने भाइयोकी मदद करने आये हैं। मुसीबतमें इनसान ही इनसानके काम आता है। हम दे रहे हैं, इसीसे दाता नही, और जो ज़रूरतमन्द ले रहे है, वह मंगते नही। यह तो सब मिलकर मुसीबतमें एक-दूसरेका हाथ बटा रहे है। इसीलिए गाँवमें जो सचमुच इम्दादके योग्य हो उसे बुला दो, जो हमसे उसकी सहायता बन सकेगी करेंगे।"

गाँववालोने जिस बुढियाका नाम बताया, उसने मिन्नतें करनेपर भी कुछ नहीं लिया। तब वे गाँववाले स्वयं ही बोले, "आप नाहक़ परेशान होते हैं। इम्दाद लेगा, तो सारा गाँव लेगा, वर्ना कोई न लेगा। अगर आप हमें न देकर, सिर्फ एक-दोको देकर चले जायेंगे, तो सारा गांव इन्हे हलका समझेगा, ताना मारेगा, इसी डरसे ये लोग नही लेते है और न लेंगे।"

बडा जी खराब हुआ, जिन्हे सचमुच सहायताकी ज़रूरत थी, उन्हें भी सहायता न दी जा सकी। लाचार कारमें बैठकर नहरकी पटरी-पटरी दिल्लीकी ओर वापस जा रहे थे कि नहरके किनारे कुछ लोग औरतो-बच्चो-समेत दिखाई दिये तो कार रुकवा ली। पूछनेपर मालूम हुआ कि गाँवमें पानी आ जानेसे यह लोग यहाँ आ गये है और ज्यादातर किसान जाट हैं।

हमने जब इम्दाद देनेकी बात उठायी तो वे लोग बातको टाल गये, दुबारा कहा तो ऐसे चुप हो गये जैसे कुछ सुना ही नही। फिर तनिक

ज़ोर देकर कहा तो बोले, "आपकी मेहरबानी, हमें किसी चीज़की दरकार नहीं, भगवान्का दिया सब कुछ है।"

उस गाँवकी भिक्षुक मनोवृत्ति देखकर हम जो गाँववालोके प्रति अपनी राय कायम कर चुके थे, वह उडती-सी नज़र आयी तो हमने अपनी दानवीरताके बडप्पनके स्वरमें तनिक मधुरता घोलते हुए कहा, "सकोच-की कोई बात नहीं, तुम्हारा जब सब उजड गया है, तो यह सामान लेनेमें उज्र किस बातका ? यह तो लाये ही आप लोगोके लिए है।"

हमारी बात उन्हें अच्छी नही लगी, शिष्टाचारके नाते उन्होंने कहा तो शायद कुछ नही, फिर भी उनके मनोभाव हमसे छिपे नही रहे। उन्होंने मौन रहकर ही हमपर प्रकट कर दिया कि जो स्वय अन्नदाता हैं, वे हाथ क्या पसारेंगे ? फिर भी हमारे मन रखनेको उनमें-से एक बूढा बोला, "लाला, हम सब बडे मौजमें हैं, अगर कुछ देनेकी समायी है तो उस टीलेपर हमारे गाँवका फकीर पडा हुआ है, उसे जो देना चाहो दे आओ। हम सब अपनी-अपनी गुज़र-बसर कर लेंगे। उसकी इम्दाद हमारे बसकी नहीं।"

आखिर उस फकीरको ही आटा-वस्त्र देकर अपनी दानशीलताकी खाज मिटायी गयी। कारमें सब साथी मुँह लटकाये दिल्ली वापस जा रहे थे, हम बडे या ये किसान, शायद इसी समस्याको सब सुलझा रहे थे।

डालमियानगरमें सहारनपुरके चौ० कुलवन्तराय जैन रहते थे। पचास-पचपन वर्षकी आयु होगी। ज़ौशऊर, खुशपोश और बडी वज़अ-क़तअके बुज़ुर्ग थे। घरके आसूदा थे, मगर व्यापारमे घाटा आ जानेसे यहाँ सर्विस करके दिन गुज़ार रहे थे। मामूली वेतन और मामूली पोस्टपर काम करते थे। मेरे पास अकसर आया करते और बडी तजरुबेकी बातें सुनाया करते थे। निहायत खुशइखलाक, बा-मज़ाक, नेकचलन और कायदे-करीनेके इनसान थे। उनकी सुहबतमें जितना भी वक्त सर्फ हुआ, पुरलुत्फ रहा। हर इनसानको घरेलू परेशानियाँ और नौकरी सम्बन्धी असुविधाएँ

होती है, मगर दो-तीन सालके अर्सेमें एक बार भी जबानपर न लाये। मिल-क्षेत्रोमें जहाँ बैठे-बिठाये, लोगोको उत्पात सूझते रहते है। इंक्रीमेण्ट (वार्षिक तरक्की), बोनस (नौकरीके अतिरिक्त वार्षिक भत्ता), डेजिग-नेशन पद और आफिसर्सकी शिकायतें, इन्क़िलाब, मुर्दाबाद और हाय-हाय-के नारोसे अच्छे-अच्छोके आसन और मन हिल जाते है। वहाँ उनके चेहरेपर न कभी शिकन दिखाई दी, न जबानपर हर्फे-शिकायत।

उनका इकलौता लडका रुडकी कॉलेजमें इजीनियरिड्में पढ रहा था। शायद अस्सी रुपये मासिक भेजने पडते थे। मैं जानता था यह उनके बूतेके बाहर है, उन्हें ब-मुश्किल इतना कुल वेतन मिलता था। अत. मै समझता था कि या तो धीरे-धीरे बचे-खुचे जेवर सर्फ हो रहे हैं या सिरपर ऋण चढ रहा है। पूछनेकी हिम्मत भी न होती थी, पूछूँ भी किस मुँहसे ?

आखिर एक रोज़ जी कडा करके मैने उनसे 'डालमिया, जैन छात्र-वृत्ति' लेनेके लिए कह ही दिया। सुनकर शुक्रिया अदा करके मन्दिरजी चले गये। दूसरे रोज़ घरपर तशरीफ लाये और फरमाया, "गोयलीयजी, आप मेरे बडे शुभचिन्तक हैं, यह मै जानता हूँ। आपने मेरा दिल दुखाने-को नही, बल्कि नेकनीयतीसे ही मुझे यह सलाह दी है। आपकी बात टालनेकी हिम्मत न होनेकी वजहसे, मैं उस वक्त स्वीकृति देकर चला गया। मगर फिर घर जाकर सोचा तो, बात मनमें बैठी नही। एक साल रह गया है, जैसे भी होगा निकल ही जायेगा। इस बुढापेमें क्यो ज़रा-सी बातपर खानदानको दाग लगाया जाये ? भला लडका ही अपने मनमें क्या सोचेगा ? भाई गोयलीयजी, मैं छात्रवृत्ति लेकर अपने बच्चेका दिल छोटा हरगिज़ नहीं करूँगा।"

चौधरी साहब इतना स्वाभिमानपूर्ण उत्तर देंगे, अगर मुझे ज़रा भी शक होता तो मैं यह ज़िक्र तक न छेडता। मगर अब तो तीर कमानसे निकल चुका था, निशानेपर न लगे तो तीरन्दाज़की खूबी क्या ? मै तनिक

अधिकारपूर्वक बोला, "चौधरी साहब, आपका साहबजादा फर्स्टक्लास फर्स्ट आया है, ऐसे होनहारको तो वज़ीफा लेनेका पूरा हक़ है। इसमें संकोच और एहसानकी क्या बात है? यह तो उसे बतौर इनाम मिलेगा।"

मैंने समझा वार भरपूर बैठा है और चौधरी साहब अब सीधे खड़े नही रह सकते। मगर नही, उन्होंने वार भी बडी खूबीसे काटा और मुझे पटखना भी ऐसा दिया कि चोट भी न लगे और हमलावरकी तारीफ करनेको जी भी चाहे।

फरमाया, "गोयलीयजी, आपका फरमाना बजा है, मगर बेअदबी मुआफ, यदि होनहार लडकोको वज़ीफेके तौरपर मिलता है, तो ग़रीब-अमीर सब लडकोको बिना माँगे क्यो नही मिलता, सिर्फ गरीब लडकोको ही क्यो मिलता है?"

मेरे पास इसका जवाब नही था, क्योकि मैं जानता था कि असहाय विद्यार्थी भी उच्चसे उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकें, आर्थिक अभावके कारण उनका विकास न रुक जाये, इसी सद्भावनासे प्रेरित होकर श्रीमान् साहू शान्तिप्रसादजीने छात्रवृत्ति जारी की है।

चौधरी साहब आज संसारमें नहीं है, मगर उनकी वज़अदारी याद आती रहती है।

अनेकान्त, दिल्ली; मार्च १९४८ ई०

■

आकस्मिक प्रेरणा

सन् १९२५-२६ ईसवीकी बात होगी। जाडोके दिन थे। मेरे एक मित्र दिल्लीमें ही रहते थे। उनके यहाँ कुछ मेहमान आये हुए थे। उन सबकी इच्छा थी कि मैं भी रातको उन्हींके पास रहूँ। अत घरपर मैं अपनी माँसे रातको न आनेके लिए कहकर चला गया और मित्रके यहाँ जागरणमें सम्मिलित हो गया, परन्तु रात्रिको दस बजेके करीब घर आनेके लिए एकाएक मन व्याकुल होने लगा। मित्रके यहाँ मुझे काफी रोका गया और इस तरह मेरा अकस्मात् चल देना उन्हे बहुत बुरा लगने लगा। मैं भी इस तरह एकाएक जानेका कोई कारण न बता सकनेकी वजहसे अत्यन्त लज्जित हो रहा था, किन्तु उनके बार-बार रोकनेपर भी मुझे वहाँ एक मिनिट भी रहना दूभर हो गया और मै ज़िद करके चला ही आया। घर आकर माँको दरवाज़ा खोलनेको आवाज़ दी। दरवाज़ा खुलनेपर देखता हूँ कि कमरेमें धुआँ भरा हुआ है और माँके लिहाफमें आग सुलग रही है। दौडकर जैसे-तैसे आग बुझायी। पूछनेपर मालूम हुआ कि थोडी देर पहले लालटेन जलानेको माचिस जलायी थी, वही बिस्तरेपर गिर गयी और धीरे-धीरे सुलगती रही। यदि दो-चार मिनिटका विलम्ब और हो जाता तो माँ जलकर भस्म हो जाती। साथ ही मकानमें ऊपर तथा बराबरमें रहनेवालोंकी क्या अवस्था होती, कितनी जन-हत्या होती, कितना धन नष्ट होता, यह सब सोचते ही, कलेजा धक-धक करने लगा। उस समय किस आन्तरिक शक्तिने मुझे घर आनेके लिए प्रेरित किया? यह मेरे किसी पूर्व संचित पुण्यका उदय ही समझना चाहिए।

इसी तरहकी आन्तरिक प्रेरणाएँ किसी निकट सम्बन्धीके बीमार पडनेपर बिना किसी सूचनाके मुझे सुदूरसे कितनी ही बार खींच लायी हैं।

अनेकान्त, दिल्ली, फरवरी १९३९ ई०

■

श्री गोयलीयजीकी कृतियाँ

शाइरी

उर्दूके जन्मकालसे १९६० तककी ग़ज़लका इतिहास, तुलनात्मक अध्ययन और सर्वश्रेष्ठ गज़ल-गो शाइरोंका जीवन-परिचय एवं कलाम

शेर-ओ-सुखन—[१ से ५ भाग तक] मूल्य बीस रुपये

प्रथम महायुद्धके पश्चात् उर्दू-शाइरीमे आये हुए इन्किलाबका इतिहास और शाइरोका परिचय एव कलाम

शाइरीके नये दौर—[१ से ५ तक] मूल्य पन्द्रह रुपये

द्वितीय महायुद्धके बादसे १९६५ तक तरक्की पसन्द प्रगतिशील शाइरीपर सिंहावलोकन और उच्चकोटिके शाइरोका परिचय एव कलाम

शाइरीके नये मोड़—[१ से ५ तक] मूल्य पन्द्रह रुपये

प्रारम्भमे वर्तमान युगीन ३१ सर्वश्रेष्ठ शाइरोका जीवन-परिचय एव कलाम

शेरो-शाइरी— मूल्य आठ रुपये

नग़मए-हरम—[बहू-बेटियोकी शाइरी] मूल्य चार रुपये

शिष्योके कलामपर उच्चकोटिके उस्तादोकी इस्लाहे

उस्तादाना कमाल— मूल्य चार रुपये

छोटी-छोटी कहानियाँ

श्री गोयलीयजीके वही सब सारभूत जीवनके अनुभव सूक्ति रूपमें मिलेंगे
जो उन्होंने गुरुजनोंके चरणोंमें बैठकर सुना,
इतिहास और धर्मग्रन्थोंमें पढा,
और हियेकी आँखोंसे देखा,

गहरे पानी पैठ मूल्य तीन रुपये

जिन खोजा तिन पाइयाँ मूल्य तीन रुपये

कुछ मोती कुछ सीप मूल्य ढाई रुपये

लो कहानी सुनो मूल्य दो रुपये

समाजसेवी, त्यागी और विद्वानोंके संस्मरण

जैन-जागरणके अग्रदूत मूल्य पाँच रुपये

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन